स्त्रियों और वालिकाओंके पढ़ने योग्य पवित्र और उच्च भावनापूर्ण पुस्तकें।

Printed by C. S. Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Home, Sandhurst Road, Girgaum, Bombay.

Published by Krishnalal Varma, Proprietor, Granth-Bhandar, Hirabag, Girgaon, Bombay.

समर्पण।

अनन्तकालसे कवि जिसकी महत्ताका गुण गाते आये है; जो
त्याग और सर्वस्व दानके लिए अनुपमेय है,

अग्नि भी पवित्रताके कारण जिसे स्पर्श नहीं कर सका
जिसके तेजके सामने बड़े बड़े वीरोंने सिर झुका
दिया, जिसका हृदय पृथ्वीकी तरह
विशाल और दयालु है

उसी शक्तिरूपिणी महामहिमामयी महिलाजातिके
करकमलोंमें सादर

समर्पण।

"छिः! सुरसुंदरी! नारी होकर तेरे ये भाव! पुरुषका धर्म कठोरता है तो नारीका धर्म कमनीयता और कोमलता है। पुरुषका कार्य निर्दयता है तो स्त्रीका धर्म दया है। पुरुषका धर्म लूटना है तो स्त्रीका धर्म सर्वस्व दान है। इन विरोधी गुणोंके विना नारीका वास्तविक रूप कैसे प्रकट हो सकता है? जो पति स्नेह और आदर करता है उससे तो भक्ति और प्रेम सभी स्त्रियाँ करती हैं। यह तो एक साधारण वात है। स्त्रीका वास्तविक रूप तो उसी समय प्रकट होता है जब स्त्री अपने निर्दय पतिकी मार खाकर भी उन पैरोंकी पूजा करती है, जो उसके पीठपर छातीपर या अन्यत्र निर्दयता पूर्वक गिरते हैं। इसीसे उसका वास्तविक नारी रूप-पत्नीरूप-देवीरूप-जगज्जनरक्षिणी रूप-प्रकट होता है। मैं भी नारी हूँ—वास्तविक अर्थमें नारी रहूँगी।" (सुरसुंदरी पेज २०)

गुणसुंदरी— [एक लडकीने कौतुहलसे गाठ खोली] पृष्ठ १.
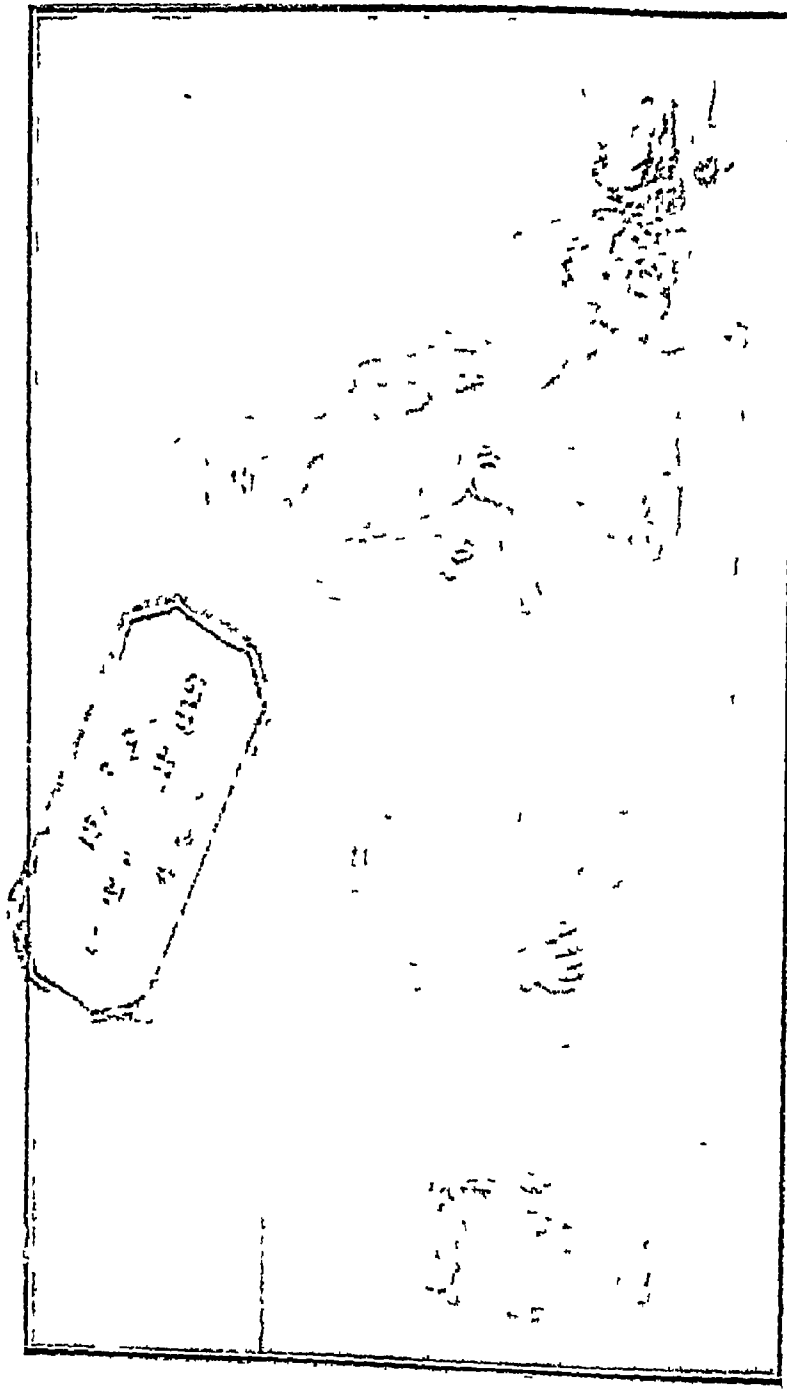
सुरसुन्दरी ।
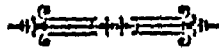
गरमीकी मोसिम थी। दुपहरका समय था। सन सन कर हवा चल रही थी। विद्यार्थियोंको छुट्टी मिली थी। कई खेलने कूदनेमें मस्त थे और कई मीठी नींद ले रहे थे।

एक दस वरसकी सुंदर वालिका फूल चुनती हुई बैठ गई। बैठी ही बैठी नींद लेने लगी।

स्कूलमें एक लड़का सबसे बड़ी आयुका था। पढ़ने लिखनेमें भी होशियार था। था भी एक धनिक घरका। इस लिए गुरुजीने उसको सबका मुखिया बना रक्खा था। इसकी आयु बारह वरससे ज्यादा नहीं थी।

नींद लेती हुई वालिकाकी साड़ीके पल्ले कुछ बँधा हुआ था। एक लड़कीने कौतुहलसे गाँठ खोली, सात कौड़ियाँ

निकलीं। सबने कुछ सलाह की। बात स्थिर हुई। तदनुसार उन कौड़ियोंका मिष्टान्न आया। चने या बेर बराबर, जितना भी हिस्सेमें आया, सबने प्रसन्न होकर खाया। बालिकाका हिस्सा भी एक तरफ रख दिया गया।

बालिका जागी। उस मुखिया लड़केने दौड़कर उसका भाग उसके सामने रख दिया और कहा—"सुरसुन्दरी, तुम्हारे लिए तुम्हारे भागकी मिठाई अलग रख छोड़ी थी। लो खाओ और पढ़ना शुरू करो।"

सुरसुंदरीने आँखें मलते मलते पूछाः—"आज मिठाई किसने बाँटी है?"

उसने हँसते हुए उत्तर दियाः—"तुम्हींने।"

सुरसुन्दरी क्रोध करके बोलीः—"जाओ, झूटे कहीं के। सच कहो अमरकुमार! आज मिठाई किसने मँगवाई?"

अमरकुमारने उसी तरह हँसते हुए कहाः—"सच कहता हूँ, यह तुम्हारी ही कृपाका फल है।"

सभी विद्यार्थी हँस पड़े। सुरसुन्दरीको उनका व्यवहार अच्छा न लगा। सुरसुन्दरी अपना स्वर पहलेसे जरा तीव्र करके बोलीः-"ये क्या खिल २ लगा रक्खी है? जाओ, मैं न खाऊँगी।"

अमरकुमार जबर्दस्ती हँसी रोककर बोलाः—"आप नाराज क्यों होती हैं? आपकी साड़ीके पल्ले जो सात कौड़ियाँ बँधी थीं, उन्हींकी, पल्लेसे खोलकर, हमने मिठाई मँगवाई है।"

सुरसुन्दरीके दिलमें इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि, उन लोगोंने उसकी असावधानीमें कौड़ियाँ खोलकर, उसको पूछे विना, उनकी मिठाई मँगवा ली। उसका मिजाज बहुत गरम हो गया। उसने कहाः—"चोर कहींका। बड़ा धन्ना सेठ आया है? दूसरेके पैसोंपर ताकड़धिन्ना। किस गुरुने इस तरह चोरी करना सिखाया? किसने औरोंकी जेवें काटकर मिठाई बाँटना वताया? किसने ऐसी उदारताका पाठ पढ़ाया? तेरी अकल कहाँ मारी गई थी? सबका मुखिया बना है। क्या ऐसी गिरहकटीहीके लिए? माँ बाप तेरी इस बातको सुनेंगे तो कहेंगे,—"अच्छा कपूत जन्मा!" गुरुजी सुनेंगे तो कहेंगे—"सब परिश्रम पानीमें गया।"

सुरसुन्दरीकी बातें सुनकर अमरकुमारकी भौंहें भी चढ़ गईं। वह बोलाः—"बड़ी राजाजीकी लड़की हुई है। सात कौड़ियाँ क्या चीज हैं? इन्हींके लिए ऐसी घवरा रही है मानों लाखोंकी दौलत लुट गई है।"

सुरसुन्दरी कड़ककर बोलीः—"ये लाखोंसे भी ज्यादा थीं, उनसे तो मैं राजाका राज लेती।"

अमरकुमार कुछ उत्तर देना चाहता था; परन्तु इतनेहीमें गुरुजी आगये। अमरकुमारको विवश अपनी जीभ रोकनी पड़ी। सुरसुन्दरीको जबर्दस्ती अपने मुँह पर लगाम लगानी पड़ी।

थोड़ी देरमें सुरसुन्दरी सारी बातें भूल गई; परन्तु अमर-कुमारके हृदयसे सुरसुन्दरीके शब्द नहीं हटे कि, मैं सात

कौड़ीमें राज लेती। उसने स्थिर किया कि, अवकाश मिलते ही मैं अपने अपमानका वदला लूंगा।

[२]

जंबूद्वीप गोलाकार है। इसका घेर तीन लाख योजनका है। इसीमें चम्पा नामकी एक सुन्दर, रम्य, धनधान्यपूर्ण नगरी थी। इसके अन्दर रहनेवाले सभी सुखी थे, उस नगरीके राजाका नाम रिपुमर्दन था। वह अपने देशवासियों-का हितैषी था। सारी प्रजा उससे प्रेम करती थी। न्यायी ऐसा था कि धनी निर्धन, अधिकारी अधिकृत सभीको एक दृष्टिसे देखता था। अपनी भुजाओंके जोरसे उसने अपना राज्य वहुत वढ़ा लिया था। वह जैसा वीर था वैसा ही क्षमा-वान भी था।

'शक्तानां भूषणं क्षमा'

'क्षमा वलवानोंका भूषण है।' इस कहावतको वह वरावर चरितार्थ करता था। शत्रु जव शरणमें आजाता तव उसके लाख अपराध भी वह क्षमा कर देता था।

इसके इन्द्राणीके समान सुन्दर रतिसुन्दरी नामकी रानी थी। जैसी वह रूपवती थी वैसी ही वह गुणवती भी थी। धर्ममें उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। चम्पापुरीके नृप रिपुमर्दनके हृदयका वह प्रकाश थी।

इसके एक वालिका थी उसका नाम सुरसुन्दरी था।

इसी नगरमें एक साहूकार रहता था जिसका नाम धना-

वह था । वह पूर्ण जीवनके सुखोपभोगोंको भोगता था; परन्तु साथ ही संयमी भी था। जैसी सुख भोगनेमें उसकी रति थी वैसी ही धर्म–ध्यानमें उसकी मति थी । धर्म-ध्यानमें, समयपर लग जानेके कारण वह सबका शिरोमणि समझा जाता था। वह अपने स्वजन–सम्बन्धियोंका हितैषी था, दुखियोंका आराम था, असहायोंका सहारा था और गरीबोंके लिये दाता कर्ण था। उसके द्वारपर आशा लेकर आया हुआ कोई निराश होकर नहीं गया।

उसके धनवती नामकी स्त्री थी। उसे देखकर देवांगनाओं-का ध्यान आ जाता था। कइयोंको तो यह भ्रम हो जाता था कि, यह कोई देवांगना ही तो स्त्रीका रूप धारण करके नहीं आई है।

उसके एक पुत्र था। उसका नाम था अमरकुमार। सुन्दर मुख, गौर वर्ण, चंचल नेत्र आयु लगभग बारह बरस।

प्रथम प्रकरणमें जिनका कथोपकथन दिया गया है वे ये ही नृप और श्रेष्ठीके बालिका बालक सुरसुन्दरी और अमर-कुमार हैं।

[३]

दोनोंने गुरुजीके पाससे पूर्ण विद्या प्राप्त की । उन्होंने जीव, कर्म, तत्व, पदार्थ, नय आदिका भी पूर्ण रूपसे अध्ययन किया।

एक दिन सुरसुन्दरी अपनी माता के साथ पौषधशालामें,

साध्वीजीके दर्शनार्थ गई। साध्वीजीने सुरसुन्दरीको पढ़ी लिखी समझकर और धार्मिक ज्ञान अच्छा है यह जानकर उससे पूछाः—"सम्यक् क्या है?"

सुरसुन्दरीने उत्तर दियाः—"जीवादि नौ पदार्थोंका जिसको ज्ञान है वह सम्यक्त्वी है और भावपूर्वक जो इनपर श्रद्धा करता है वह भी सम्यक्त्वी है।"

प्रश्न—जो जानता है मगर श्रद्धा नहीं रखता वह सम्यक्त्वी है या नहीं?

उत्तर—श्रद्धा विना ज्ञान निकम्मा है। श्रद्धा होती है तभी जीव सम्यक्त्वी होता है।

प्रश्न—सम्यक्त्वका और भी कोई लक्षण है?

उत्तर—है। यथार्थ स्वरूपपर ज्ञानपूर्वक श्रद्धा करनेका नाम सम्यक्त्व है।

प्रश्न—यथार्थ स्वरूप किसका?

उत्तर—देव, गुरु और धर्मका।

प्रश्न—तुम इनका स्वरूप जानती हो?

उत्तर—जो अठारह दोष रहित वीतराग और हितका उपदेश देनेवाले होते हैं, वे सच्चे देव होते है; जो इन्द्रिय-जयी धर्मशास्त्रोंकी आज्ञानुसार उपदेश और आचरण करनेवाले होते हैं, वे सच्चे गुरु होते हैं और जो जीवोंको दुर्गतिसे बचाता है, जो दयाका उपदेश देता है, अहिंसा जिसका प्राण है वही सच्चा धर्म है।

साध्वीजी सुरसुन्दरीकी बातें सुनकर प्रसन्न हुई और रानीसे कहने लगीं:—"रानी तुमने रत्न उत्पन्न किया है। इसको किसी सच्चे जौहरीके हाथ सौंपना। देखना किसी कव्वेकी चोंचमें यह रत्न न चला जाय।"

रानीने हाथ जोड़कर कहा:—"मेरा रत्न अबोल चकाचौंध दिखानेवाला ही नहीं है। उसके मुँहमें जवान है, शरीरके अंदर चेतना शक्ति है और दूसरोंको अपने अनुसार बनानेकी कला है। यदि आपकी दया होगी तो वह कौवेको भी राज-हंस बना लेगी। चाहिए बस आपका आशीर्वाद।"

दोनोंकी पढ़ाई समाप्त हो गई तब गुरुजी उन्हें लेकर राजाके पास गये। राजाने भरे दर्बारमें दोनोंकी परीक्षा ली। परीक्षामें दोनों पास हुए। दोनोंने सौमेंसे सौ नंबर पाये। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने गुरुजीको धन देकर सन्तुष्ट किया। अमरकुमारके पिताने भी उन्हें बहुतसा धन दिया।

[४]

सुरसुंदरी अब पूर्ण यौवना हो गई थी। उसका अंग प्रत्यंग सुगठित था। उसका लाल शरीर एवं उसके तेजपूर्ण तीव्र कटाक्ष यौवनके साम्राज्यकी जयपताका उड़ा रहे थे।

सुरसुंदरीकी माताने एक दिन रिपुमर्दनसे कहा:—"लड़की अब सयानी होगई है शीघ्र ही इसका व्याह कर देना चाहिए।"

रिपुमर्दनने उत्तर दियाः—"मुझे भी इसी चिन्ताके मारे आजकल नींद नहीं आती मगर किया क्या जाय? इसके योग्य कोई वर नहीं दीखता। राजहंसिनी और कौवेका क्या मेल? सिंहनी और बकरेका क्या साथ? हस्तिनी और गधे-से क्या निसबत?"

दोनों थोड़ी देर चुप रहे, किसीकी जबानमें शब्द नहीं था। रानी राजाके मुखकी ओर देख रही थी और राजा आकाशकी ओर टक लगाये था। अन्तमें रानीने इस मौन-को तोड़ा,—"मेरे ध्यानमें एक वर आया है।"

राजाने उत्सुकताके साथ पूछा—"कौन?" रानीने जवाब दिया—"अमरकुमार।"

राजाने आश्चर्यके साथ कहाः—"वणिक् पुत्र!"

रानीने कहाः—"हाँ! क्या वह योग्य नहीं है?"

राजा थोड़ी देर कुछ सोचता रहा, फिर बोलाः—"क्षत्रि-योचित वीरता उसमें कहाँसे आयगी?"

"अवकाश मिलने पर वीरता भी आ जाती है। और उसको लड़ने भी कहाँ जाना है? राजा रक्षक है, प्रजाको क्या चिन्ता है?"

"अगर प्रजा निश्चिंत हो जाय, यदि प्रजा वीरताके काम न कर सके, यदि प्रजाके पुरुष अपनी बहू बेटियोंकी इज्जत बचानेकी शक्ति भी न रखते हों, प्रजा केवल पराश्रित सुख–भोगमें ही लीन हो जाय तो समझना चाहिए कि, वह

प्रजा शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, उसका राजा अपने प्राण देकर भी उसे नष्ट होनेसे वचा न सकेगा।"

वहुत सोचविचारके वाद दोनोंने यही स्थिर किया कि, अमरकुमारके साथ सुरसुंदरीका व्याह कर दिया जाय।

अमरकुमारके पिता धनावह बुलाये गये। राजाने उनका वड़ा आदर सत्कार किया और अपने मनकी वात कही।

धनावह सशंक दृष्टिसे राजाकी ओर देखने लगा। यह देख राजा मुस्कराया और वोलाः—"तुम ऐसे भाव क्यों दिखा रहे हो मानों तुम्हें कोई मधुर स्वप्न आया है। मैं सचमुच ही सुरसुन्दरीके साथ अमरकुमारका विवाह करना चाहता हूँ। लड़का गुणी है, विद्वान है और सुरसुन्दरीका सहपाठी एवं वालपनका मित्र है। वह सर्वथा हमारी लड़कीके योग्य वर है।"

धनावहके आश्चर्यदर्शक भाव मिट गये थे। उसने हाथ जोड़कर कहाः—"प्रभो, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। लक्ष्मीको अपने घरमें आते देखकर कौन मूख ना कहेगा, सरस्वतीको अपनी पुत्रवधूके रूपमें पाकर किसका हृदय न नाच उठेगा? मुझे स्वीकार है। 'शुभस्य शीघ्रं' की कहावतको चरित्तार्थ करनेके लिए हमें शीघ्र ही व्याहका दिन निश्चित कर लेना चाहिए।"

धूमधामके साथ विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। सव रीतियाँ पूर्ण हुईं। माताने आँसू वहाते हुए और पिताने रुन्द्ध हृदय-

के साथ अपनी कल्पवेलीके समान प्रेमसे पाली हुई कन्याको दूसरे, स्वभावसे अपरिचित, व्यक्तिके हाथमें सौंप दिया।

[५]

प्रभातका समय था। सूर्य अभी उदय नहीं हुआ था। स्वच्छ आकाश मण्डलमें स्थिर तारे वगीचेमें खिलेहुए दुपहरके विकसित किन्तु धूपके कारण मुर्झाए हुए पुष्पोंकी भाँति मलिन हो रहे थे। पक्षियोंने मधुर एवं कोमल स्वरोंमें प्रभातियाँ गाना प्रारंभ कर दिया था। सुरसुन्दरी और अमरकुमार अपनी छतपर बैठे हुए आलस्य मिटा रहे थे और समुद्रकी ओर एक टक देख रहे थे।

देखते ही देखते उन्हें समुद्रकी सतहपर श्वेत हंसोंकी भाँति अपने पाल रूपी पक्षोंके द्वारा उड़कर आता हुआ नौका-समूह दिखाई दिया। वे एक टक उसकी ओर देखते ही रहे। थोड़ी देरमें तो वह अन्यान्य ऊँची हवेलियोंकी आड़में हो गया। जहाज वन्दरमें पहुँचे। तोपोंकी—जहाजोंके सुरक्षित पहुँचनेकी—सूचनाव्यंजक ध्वनि हुई।

ये जहाज सुरसुन्दरीके श्वसुर धनावहके थे। विदेशोंसे कमाई करके आज ही लौटकर आये थे। आज अमरकुमारका सारा दिन जहाजोंका माल उतरवाने, उनकी जाँच करने और व्यवस्थित रूपसे रखानेके काममें बीता। यह कार्य वह आगे भी करता था, परन्तु आज न जाने क्यों उसके दिलमें एक नवीन ही भावनाका उदय हुआ। वह भावना स्पष्ट

होकर यही कह रही थी,—अमरकुमार स्वयं कुछ कमाई न करके बापकी कमाई पर ही जीवन विताना कायरता है। उठ तू भी अपनी देख रेखमें जहाजोंका लंगर उठा और विदेशों-में जाकर कुछ कमाई कर।

संध्याके समय अमरकुमारने अपने पितासे जहाज लेकर विदेश जानेकी वात कही। धनावहको दुःख भी हुआ और सुख भी। दुःख इसलिए कि, इकलौती सन्तान उससे बिछुड़ना चाहती है। सुख इसलिए कि उसका सुपूत अपने वाप दादों-के धन्धेमें कदम रखना चाहता है और पहलेकी कमाइ-में अभिवृद्धि करना चाहता है। बहुत हाँ, ना के वाद पिताने अमरकुमारको आज्ञा दी।

वर्षाऋतु वीत चुकी थी। सर्दीका मोसिम प्रारम्भ हो गया था। अमरकुमार विदेश जानेवाला है इसलिए जलयात्राकी तैयारियाँ होने लगीं।

अमरकुमारने कहाः—"प्रिये! मैं विदेशोंमें व्यापारके लिए जाऊँगा। तुम आनन्दके साथ धर्म ध्यानमें अपना समय विताना और मुझे अपने आनन्दके समाचार देती रहना। मैं भी तुम्हारे पास जल्दी २ समाचार भेजा करूँगा।"

सुरसुन्दरीने कातर दृष्टिसे अपने पतिकी ओर देखा—थोड़ी देर देखती रही। उसकी आँखोंमें आँसू थे। उसने भर्राई हुई आवाजमें कहाः—"मै अकेली कैसे रहूँगी?"

अमरकुमारने थोड़ा मुस्कुरा दिया, वाणीसे कोई उत्तर नहीं

दिया; परन्तु उस मुस्कुराहट द्वारा उसने बता दिया कि सुरसुन्दरीको अकेले ही रहना पड़ेगा।

सुरसुन्दरी हृदयको कड़ा करके बोली:—"प्राणनाथ! आपके विना मैं दिन न निकाल सकूँगी। मेरे हास्य विलास आनन्द उल्लास सभी आपके पीछे चले जायँगे। सर्वत्र उदासी छा जायगी, अन्धकार हो जायगा। यदि कभी धर्मशरणसे, धर्मज्ञानमें रत रहनेसे, तत्त्वज्ञान विवेचनसे मन उल्लसित होगा, हँसीकी मधुर रेखाएँ मुखपर फूट उठेंगी तो लोग मेरे सिर कलंक लगायँगे। शास्त्रोंमें भी कहा है कि, शय्या, आसन, भोजन, द्रव्य, राज्य, रमणी और घर इन सात पदार्थोंको कभी सूने नहीं छोड़ना चाहिए। यदि ये सूने रहते हैं तो इनपर दूसरा अधिकार कर लेता है। अतः नाथ! मैं तो आपके साथ ही चलूँगी।"

अमरकुमार कुछ देर तक सोचता रहा पश्चात प्रेमपूर्वक उसने मौन भाषामें सुरसुन्दरीको साथ चलनेकी अनुमति दे दी।

सुरसुन्दरीका सन्देह इस मौन भाषासे न टूटा। उसके कानोंने स्वीकारताके शब्द सुनना चाहा। इसलिए उसने अमरकुमारके मुखकी ओर सन्दिग्ध दृष्टिसे देखते हुए पूछा:—"तो मुझे साथ ले चलोगे न?" अमरकुमारने हँसते हुए कहा:—"हाँ।"

* * *

जहाज बन्दरमें तैयार खड़े अमरकुमारकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सुरसुन्दरी अपने माता पितासे मिली उनकी आज्ञा

लेकर जब वह वापिस रवाना हुई तब माताने कहाः—" बेटी, संसारमें नारीके लिए पतिसे बढ़कर और कोई नहीं है। पतिके हृदयको प्रफुल्लित रखना ही स्त्रीका सबसे बड़ा कर्तव्य है। पतिकी भूलको न देख उसके गुणोंमें लीन होना और उसकी दुर्बलताओंको अपनी शक्तिसे, अपने प्रेमसे और अपने आचरणसे मिटा देना ही नारीका आदि धर्म है। इस कर्तव्यसे—इस धर्मसे कभी मत डिगना। धर्म क्रियाएँ निरंतर करना और संकट पड़नेपर विशेष रूपसे—मन, वचन, कायाके योगोंको सब तरहसे रोक कर " भगवानका " स्मरण करना। यह दुःखसे छुड़ायगा।

सुरसुन्दरीने साससुरके चरणोंमें शिर नवाया। ससुर आशीर्वाद देकर चला गया। सासने उसके मस्तकपर प्रेमके साथ हाथ रक्खा, उसे उठाया और कहाः—" पुत्री! मैं तुझे क्या उपदेश दूँ? तू स्वयं शिक्षिता है, सब कुछ समझती है। तो भी तुझे दो शब्द कहना चाहती हूँ। मैं आज अपना हृदयका लाल, अपनी आँखोंका तारा तेरे भरोसे रवाना करती हूँ। वह आज तक मुझे छोड़कर कभी नहीं रहा। अतः उसको जब जब मेरी याद आवे, व्याकुल हो, तब तब तुम उसे ढारस बँधाना और उसके शरीर एवं मनका यत्न करना। इसीमें तुम दोनोंका सुख है।"

पिताने पुत्रको यात्राका शुभ शकुन—सूचक नारियल हाथमें देते हुए कहाः—" बेटा! वनमें विचरणकरनेवाले साहसी

सिंहकी भाँति अपनी इन्द्रियोंको सदा वशमें रखना; देश, काल और परिस्थितिके अनुसार आचरण करना। सवेरे ब्राह्म मुहूर्त में—सूर्योदयके पहले उठना और पंच परमेष्ठीका जाप करना। अपने नौकरोंके साथ कभी कठोरताका व्यवहार न करना। उनसे भूल हो जाय तो प्रेम पूर्वक उन्हें वताकर क्षमा कर देना। अपना बलाबल देखकर किसीसे युद्ध या संधि करना। सदा सावधान रहना। सन्तोप न छोड़ना। शाम, दाम, दंड, भेद जैसे हो सके वैसे अपना काम कर लेना। अपनी कुशलताके समाचार भेजते रहना। देख बहूको किसी प्रकारका कष्ट न हो इस बातका सदा ध्यान रखना।"

अमरकुमार और सुरसुन्दरी अपने जहाजके कमरेमें जा बैठे। तोपोंकी गर्जनाके साथ जहाजके वेड़ेने लंगर उठाया। वेड़ा समुद्रकी छाती फाड़ता हुआ मार्ग पूर्ण करने लगा। धनावह आदि जहाज दिखते रहे तब तक बंदर पर खड़े एक टक उनकी ओर देखते रहे।

[६]

जहाज सिंहलद्वीप टापूमें पहुँचे। इस टापूके सिवा दूसरी जगह बहुत दूर तक कोई टापू नहीं आता था। तीन चार दिन तक जहाज अनन्त जलराशि पर ही तैरते रहेंगे, इसलिये जहाजोंने सिंहलद्वीपमें लंगर डाले। फल फूलोंसे परिपूर्ण उस टापूको देखकर सबके मनमें वहाँ दो चार दिन रहनेकी इच्छा हुई। मगर मालूम हुआ कि, वहाँ पहाड़में एक मानव-भक्षी

राक्षस रहता है। रातके समय वाहर निकलता है और जिस मनुष्यको पाता है उसीको भक्षण कर जाता है। यह जानकर सवने वहाँ रहनेका विचार छोड़ दिया। सवके सव जल्दी जल्दी पानी भरने और हो सके उतने फल फूल लेकर जहाजोंमें रख लेनेके काममें लगे।

अमरकुमार और सुरसुन्दरी भी जाकर एक वृक्षके नीचे सघन वृक्षराशीके वीच, हरी हरी दूवके ऊपर वैठ गये। दोनों वातें करने लगे। वाल्य जीवनकी वातें—विद्यालयके आनंद उल्लास एक एक करके सवका वर्णन होने लगा। सुरसुन्दरीको वातें करते करते ऊँघ आने लगी। वह अपने पतिकी गोदमें सिर रखकर लेट गई; लेटते ही मीठी नींद लेने लगी।

वार्तालापके सिलसिलेमें अमरकुमारको सुरसुंदरीकी वह वात याद आई जो सुरसुंदरीने, उसके पल्लेसे सात कौड़ियाँ खुलवा लेने पर, तिरस्कारके साथ अमरकुमारको कही थी कि,- सात कौड़ीमें तो मैं राज्य लेती।"

वचपनमें इस तिरस्कारका वदला न ले सका था। आज उसे तिरस्कारका वदला लेनेकी सूझी। उसने क्रोध पूर्वक मन ही मन कहाः—"अभिमानिनी! आज मैं तिरस्कारका वदला लूँगा और तेरे अभिमानको चूर्ण करूँगा।"

उसने धीरेसे उसका सिर एक पत्थरपर रख दिया और उसके पल्ले सात कौड़ियाँ वाँध कुछ लिख दिया।

अमरकुमार चला। चला मगर उसके पैर नहीं उठते थे।

विवेक आकर उसको इस दुष्ट कामके लिये फटकारता था। वह कहता था,—"मूर्ख! बाल्यक्रीड़ाके खेल और उसके अविचारी कथनका यह बदला? मुग्धा बालाके अनन्त विश्वास और प्रेमके परिवर्तनमें ऐसी विश्वास घातकता! यह नीचता! हजारों मनुष्योंके सामने सदा जिसकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी; जिसको सुखी बनानेका अभिवचन दिया था उस प्रतिज्ञाका यह पालन? उस वचनका यह निर्वाह?"

अमरकुमारने कहा,—"सच है। अज्ञान और अजानमें कही हुई बातका विचार क्या? नहीं मुझे यह क्षुद्र कार्य नहीं करना चाहिए। अगर मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा तो इसके प्राण नहीं बचेंगे।"

अमरकुमार वापिस सुरसुन्दरीके पास गया। उसके सिर-पर हाथ रक्खा, मगर उसकी आँख न खुली। दुर्भाग्यका भयंकर विपाक उदयमें आनेवाला था फिर उसकी नींद क्योंकर खुलती?

अमरकुमारको फिर बाल्यावस्थाकी घटना और उस अव-सरपर की हुई प्रतिज्ञा याद आई। उसके मनमें फिरसे दुर्द-मनीय दुर्बुद्धिका दौर आरम्भ हुआ।

उसने सोचा,—जो जैसा करता है उसे उसका प्रतिफल मिलता ही है। संसारमें घातका प्रतिघात होता ही है। प्रकृति बच्चे, बूढ़े या जवान किसीके साथ रिआयत नहीं करती। अग्नि जलाती ही है। पानी भिगोता ही है। नीम कडुआ लगता

ही है, क्योंकि यही इनका स्वभाव है। तब कर्मफल दिये बिना कैसे छूट सकते हैं ? इसका भविष्य जो होगा सो होगा। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी ही चाहिए। इस अभिमानिनीका दर्प चूर्ण करना ही श्रेष्ठ है।

जैसे समुद्रमें ज्वार आता है और चट्टानसे टक्कर खाकर पानी वापिस लौट जाता है वैसे ही विवेक—ज्ञान—सागरकी एक उत्ताल तरंग उठी और सबको अपनेमें समा लेनेके लिये आगे बढ़ी; परन्तु सुरसुंदरीके बुरे कर्मोंके उदयकी और अमरकुमारके दुष्ट विचारकी चट्टानसे टकराकर वापिस लौट गई। अमरकुमार अपनी पत्नी, राजसुता, माता पिताकी आँखोंका तारा, साससमुरकी प्रिय वधूको अकेली भयानक वनमें छोड़कर चला गया।

जब अपने जहाजोंसे थोड़ी दूर रहा तब रोने-चिल्लाने लगा,—हाय सुरसुंदरी ! मैं अब तेरे बगैर अकेला कैसे रहूँगा ? माता पिताको जाकर क्या कहूँगा ? साससमुरको कैसे मुँह दिखाऊँगा ? लोग जमा हो गये। उनके पूछनेपर अमरकुमारने कहाः—"राजसुताको राक्षस मारकर खा गया है।" सबने यह बात मान ली। धीरे धीरे, अमरकुमारको धीरज बँधाकर सब अपनी अपनी जगहपर जा बैठे। अमरकुमारने भी अपने जहाजपर सवार होकर जहाज चलानेका हुक्म दिया। पाल तान दिये गये और जहाजोंके लंगर उठा लिए गये। अनुकूल वायु पाकर बेड़ा तेजीके साथ आगेकी ओर बढ़ा।

सुरसुंदरी जागी, उठी, आँखें मलीं, आलस छोड़ा और इधर उधर देखने लगी। कोई दिखाई नहीं दिया। बैठी थी खड़ी हो गई और वृक्षोंमें यहाँ वहाँ खोजने लगी; मगर अमर-कुमार कहीं नहीं दीखा। वह घबराई, भयसे हृदय धड़कने लगा, सुहावनी वृक्षराशी, सुगंधित लताएँ और हरी हरी दूब उसे भयानक दिखाई देने लगीं। वह समुद्रकी ओर तेजीके साथ चली-भागी।

मगर किनारेपर जहाज कहाँ थे? दूर अति दूर जहाजोंका वेड़ा उसे जाता हुआ दिखाई दिया। वह एक टक उसकी ओर ताकती रही। वेड़ा धीरे धीरे अदृश्य हो गया।

सुरसुंदरीके हृदयपर मानों वज्र गिरा। वह एक हाय करके भूमि पर जा पड़ी। हाय! जिसके सिर ठनकनेसे सारी चंपा-पुरी व्याकुल हो उठती थी, वही राजसुता सुरसुंदरी आज मूर्च्छित पड़ी है और उसकी शुश्रूषा करनेवाला कोई भी नहीं है। यही कर्मकी गति है! इसी लिए महापुरुषोंने संसारको असार बताया है।

जहाँ कोई सहायक नहीं होता वहाँ प्रकृति मददगार बनती है। मंद पवनने बहकर सुरसुंदरीको जगाया। मगर यह जागृति उसके लिए भयंकर थी। वह नाथ! नाथ! पुकारकर रोने लगी। मगर कौन इस पुकारका उत्तर देता? कौन उसके आँसू पोंछता? वहाँ मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी न थे। थे मात्र वृक्ष और लताएँ। वे क्या उत्तर देते? तो भी उन्होंने

अपनी मौन भाषामें सुरसुंदरीको आश्वासन दिया, धीरज बँधाया, अपने आश्रयमें रखनेकी उत्सुकता बताई और पुरुषोंकी तरह कृतघ्न नहीं बननेका अभिवचन दिया।

सुरसुंदरीने आँचलसे आँसू पोंछे। पल्ला छोड़ते समय उसको गाँठ नजर आई। उसने खोली। सात कौड़ियाँ निकलीं। कौड़ियोंके नीचे पल्लेपर लिखा था,—"सात कौडीमें राज्य लेकर राणी बनो।"

इस वाक्यका एक एक अक्षर और इन कौड़ियोंका एक एक स्वरूप उसके हृदयमें तपे हुए लोहेकी सलाखकी तरह चुभने और उसे जलाने लगा। उसकी आँखोंका पानी सूख गया, उसका सोया हुआ क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने घृणासे उन अक्षरोंकी ओर देखा और कहा,—"यही मेरे प्रेम और आत्मत्यागका बदला! आखिर तोताचश्म बनियेकी जात ही है न! छिः! माताने मुझे कहाँ ढकेल दिया! मैं जान बूझकर उस बचपनके चोरके फंदेमें कहाँ फँस गई! मैंने क्यों अपने आपको इसके हाथ सौंप दिया?"

क्रोधसे उसका हृदय जलने लगा। वह जल्दी २ समुद्रके किनारे टहलने लगी।

सूर्य ढल चुका था। ठंडी हवा चल रही थी। वृक्ष झूमते हुए साँय साँय करके सुरसुंदरीको कुछ सुना रहे थे। मगर क्रोधाभिभूत सुरसुंदरीने एक शब्द भी न सुना।

वह एक वृक्षके सहारे बैठ गई। धीरे धीरे उसका क्रोध

घटने लगा। उसका मन प्रकृतिस्थ हुआ। शनैः शनैः उसके सामने उसका नारी रूप आ खड़ा हुआ। उसका विवेक ज्ञान जागृत हुआ।

वह बोली,—"छिः! सुरसुंदरी! नारी होकर तेरे ये भाव! पुरुषका धर्म कठोरता है तो नारीका धर्म कमनीयता और कोमलता है। पुरुषका कार्य निर्दयता है तो स्त्रीका धर्म दया है। पुरुषका धर्म लूटना है तो स्त्रीका धर्म सर्वस्व दान है। इन विरोधी गुणोंके विना नारीका वास्तविक रूप कैसे प्रकट हो सकता है? जो पति स्नेह और आदर करता है उससे तो भक्ति और प्रेम सभी स्त्रियाँ करती हैं। यह तो एक साधारण वात है। स्त्रीका वास्तविक रूप तो उसी समय प्रकट होता है जब स्त्री अपने निर्दय-पतिकी मार खाकर भी उन पैरोंकी पूजा करती है, जो उसके पीठपर छातीपर या अन्यत्र निर्दयता पूर्वक गिरते हैं। इसीसे उसका वास्तविक नारी रूप—पत्नी-रूप—देवी रूप—जगज्जनराक्षिणी रूप—प्रकट होता है। मैं भी नारी हूँ—वास्तविक अर्थमें नारी रहूँगी।"

गालपर हाथ देकर थोड़ी देर सोचती रही। उसका क्षत्रिय भाव फिर जाग उठा,—मैं क्षत्रिय सन्तान हूँ। इस प्रतारणा-का वदला लूँगी; जरूर लूँगी। मगर उनकी तरह विपत्तिमें डाल कर नहीं,—उनको विपत्तिसे वचाकर। माना कि स्त्रीका धर्म क्षमा है, आत्मदान है; परन्तु स्त्री जातिको तुच्छ समझ-कर पुरुष उनके साथ जो क्षुद्र व्यवहार करते हैं वह तो सर्वथा

असह्य है; स्त्रियोंके सद्गुणोंका दुरुपयोग है........। हॉ तो सात कोड़ियोंसे राज लेकर रानी बनना होगा और अपना नारी तेज दिखाकर उन्हें सन्मार्ग पर लाना होगा।

[७]

संध्या हो गई। सूर्य छिप गया। धीरे धीरे अंधकार बढ़ने लगा। अंधकारके साथ ही साथ सुरसुन्दरीके हृदयमें भी भय बढ़ने लगा। उसने सीखा था कि, परमेष्ठी मंत्र सारे दुःखोंको दूर करनेवाला है, इसलिए उसने एक मनसे इसी मंत्रका जाप प्रारंभ किया। उसका भय जाता रहा; वह मंत्र जापमें तल्लीन हो गई।

अचानक दूरसे किसी पत्थरके फटनेकी आवाज आई। सुर-सुन्दरीने आँखें खोलीं। सामनेकी एक पहाड़ी फटी हुई और एक भयंकर मूर्ति उसमेंसे निकलती हुई दिखाई दी। उसका हृदय फिर भयसे कॉप उठा। थोड़ी देर तक एकटक उस मूर्तिकी तरफ देखती रही। वह भयंकर मूर्ति जब उसे अपनी ओर आते हुए दिखाई दी तब उसने अपना रक्षाकवच नव-कार मंत्र फिरसे जपना प्रारम्भ किया; एक चित्त होकर जपने लगी।

राक्षस धीरे धीरे सुरसुन्दरीके पास आया। उसके पास आकर भी उसे भक्षण करनेकी प्रवृत्ति न हुई। महान् निर्दय जीवके हृदयमें भी नवकार मंत्रके प्रभावसे दयाका स्रोत फूट निकला। उसने अपना स्वर जितना हो सकता था उतना कोमल

करके कहाः—" बेटी ! तू कौन है ? यहाँ क्यों आई है ? कैसे आई है ? "

बेटी सम्बोधन और कोमल स्वरमें न जाने क्या जादू है कि वह तत्काल ही सुननेवालीको अपने वशमें कर लेता है। सुरसुन्दरीने अथसे इति तक अपनी सारी कथा कह सुनाई। सुनकर उसने कहाः—" कोई चिन्ता नहीं बेटी ! आनन्दसे यहीं रहो और समय बिताओ। "

सुरसुन्दरी वहीं रहने लगी। फल फूल खाती झरणोंके मधुर जलका पान करती और अहर्निश नवकार मंत्रका स्मरण और पतिके कल्याणकी भावनामें निमग्न रहती।

कई महीने बीत गये एक दिन किसी साहूकारके जहाज इस टापूमें आकार पानी लेनेके लिए ठहरे। जहाजोंके स्वामी सेठने सुरसुन्दरीको देखा, उसे उस स्थानकी अधिष्ठात्री देवी समझा, प्रणाम किया और तब हाथ जोड़कर वह सामने खड़ा हुआ।

सुरसुन्दरीनेअति कोमल कंठमें कहाः—" पिता ! मैं मानवी हूँ देवी नहीं। "

सेठ बड़ा अप्रतिभ हुआ। थोड़ी देर चुप खड़ा रहा। फिर बोलाः—" मानवी होकर तुम यहाँ कैसे आई और कैसे जीवित हो ? "

सुरसुन्दरीने अपनी सारी कथा कह सुनाई। सुनकर सेठको दुःख, आश्चर्य और लोभ तीनों हुए। वह थोड़ी देर ललचाई आँखोंसे सुरसुन्दरीकी ओर ताकता रहा, फिर बोलाः—

" तब तुम यहाँ आनन्दमें हो ? तुम्हें फिरसे मनुष्य-समाजमें जानेकी इच्छा नहीं है ? "

सुरसुन्दरीके हृदयमें बड़ा आन्दोलन उठा। वह कुछ क्षण पृथ्वीकी ओर देखती रही। फिर जरा सिर उठाकर बोलीः—" इस भयानक वनमें, खग-मृग-विहीन इस भयंकर जंगलमें अपने माता पितासे दूर होकर, कुटुम्ब कवीलेसे बिछुड़कर और खासकर अपने प्राणधनके वियोगमें कौन रमणी सुखी रह सकती है ? तो भी विश्वासघातक मानव-समाजमें और खास-कर पुरुप—समाजके साथमें रहनेसे तो मुझे बड़ी ही घृणा हो गई है। पुरुप-समाज विचारी अवलाओंकी इसी तरह प्रतारणा किया करता है। "

सेठने कहाः—" पाँचों उँगुलियाँ समान नहीं होतीं। इसी तरह समस्त पुरुप समाज भी विश्वासघातक नहीं होता। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें तुम्हारे देश पहुँचा दूँगा। "

सुरसुन्दरी थोड़ी देर सोचती रही, जाना उचित है या अनुचित ? इसीकी मीमांसामें लगी रही। अन्तमें उसने जाना ही स्थिर किया। कारण उसे सात कौड़ीमें राज लेनेका उद्योग करना था।

सेठने उसे विचार—मग्न देखकर पूछाः—" क्या विचार है ? "

सुरसुन्दरीने कहाः—" मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे किसी मनुष्योंके टापूमें उतार देना। मैं अपने देशमें—जबतक मेरे स्वामी न मिलेंगे तब तक—न जाऊँगी (मनोगत) और

उनसे तब भेट करूंगी जब मैं उनके कथनानुसार सात कौड़ियोंके सहारे राज ले लूंगी । (प्रकट) अपनी सन्तान समझकर मेरे साथ व्यवहार करनेकी और मुझे एकान्तमें रहने देनेकी स्वीकारता दो और धर्मको साक्षी देकर अपना वचन पालनेकी प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकती हूँ।"

सेठने सभी कुछ स्वीकार किया। प्रतिज्ञा भी की और मन ही मन हँसता हुआ सुरसुन्दरीको अपने जहाजों पर ले गया।

[८]

जवानी भी हो, सौन्दर्य भी हो और एकान्तवास भी हो, ऐसी दशामें कौनसा ऐसा पुरुष होगा जिसका मन सुन्दर स्त्रीको देखकर विचलित न होता होगा ?

सेठके मनमें तो पहले ही पाप था । अब उसकी वासना, सुरसुन्दरीको अपने वशमें पाकर, और भी प्रबल हो उठी। तो भी वह उस वासनाको तीन चार दिन दबाये रहा। वह रोज सुरसुन्दरीके पास उसकी कुशलवार्त्ता पूछने जाता, वासना-पूर्ण आँखोंसे एक टक उसकी ओर देखता और उसे पृथ्वीकी ओर ताकती हुई देखकर वापिस लौट आता।

वासना दुर्दमनीय हो गई। कामदेवकी ज्वालासे तन बदन जलने लगा। उसने स्थिर किया कि आज उससे अपनी बननेके लिये कहना और यदि नहीं माने तो बलात्कार करना।

सेठ सुरसुन्दरीके पास पहुँचा और धीरे धीरे जाकर उसके पास बैठ गया । सुरसुन्दरीको आश्चर्य एवं भय हुआ।

उसने उसके चहेरेकी ओर देखा । सेठके हार्दिक विकारोंके लक्षण उसके चहरे पर दिखाई दिये ।

सुरसुन्दरी अपनी जगहसे उठी और सेठको प्रणामकर दूर जा खड़ी हुई ।

सेठने कहाः—“ राजसुता बैठो । खड़ी क्यों हो गई ? प्रसन्न तो हो न ? ”

सुरसुन्दरीने पैरके अंगूठेसे जमीन कुरेदते हुए उत्तर दियाः— “ प्रभुकी दयासे आनंद है ।”

सेठ थोड़ी देर इधर उधर करके बोलाः—“राजसुता, मेरी एक प्रार्थना है । क्या स्वीकृत होगी ?”

सुरसुन्दरीने मन ही मन कहाः—“यह दुष्ट प्रवृति प्रकाशका श्रीगणेश है, (प्रत्यक्षमें बोली) मैं किस योग्य हूँ जो आपकी बात पूरी कर सकूँ ? ”

सेठ—आप सब कुछ करनेका सामर्थ्य रखती हैं ।

सुरसुन्दरी—(मन में) क्या कहना चाहते हैं सुनूँ तो (प्रकट) कहिये ।

सेठ—क्या तुम यह नहीं समझ सकतीं कि मैं तुम्हें अपने जहाजमें क्यों लाया हूँ ?

सुरसुन्दरी—दया करके सुरक्षित स्थानमें पहुँचानेके लिये ।

एक विद्रूप व्यंजक हँसी हँसकर सेठ बोलाः—“वाह ! ऐसी भोली बातें करती हो, मानों तुम दुधमुँही बच्ची हो । अच्छा सुनो, मैं तुम्हें अपनी—हमेशाके लिए अपनी—बनानेके लिए लाया हूँ । ”

सुरसुन्दरी—मैं तो हमेशा आपकी पुत्री रहूँगी।

सेठके हृदयमें मानों किसीने छुरी मार दी। वह झुँझलाकर बोला:—"पुत्री नहीं अपनी स्त्री बनानेके लिए।"

सुरसुन्दरीने घृणासे कहा:—"छि:! कैसी अधर्मकी बातें करते हो? क्या इसी लिए आश्वासन देकर, प्रतिज्ञाकर मुझे लाये हो?"

ही ही करके सेठ हँसा और बोला:—"मछुआ मछलीको क्या किसी मधुर जलके स्रोतमें छोड़ देनेके लिए पकड़ता है? पारधी क्या चिड़ियाको एक जंगलसे ले जाकर, दूसरे जंगलमें छोड़नेके लिए, जाल बिछाता है? सुंदर उद्यानमेंसे आम और अनार क्या फेंक देनेके लिए चुने जाते हैं? उस समयकी प्रतिज्ञा एक जाल था। उस जालको बिछाये विना क्या यह चिड़िया उसमें फँसती और क्या मैं इस रूप-सुधाको अपने काममें आनेके लिए न लाकर जंगलमें सूखनेके लिए छोड़ आता?"

सुरसुन्दरी क्रोधसे तमतमा उठी और गर्जकर बोली:—"चुप!"

अपनी वणिक् सुलभ वाक्पटुता दिखाते हुए सेठ बोला:—"सब कार्य चुपचाप ही तो होगा।"

सुरसुन्दरीका सारा शरीर क्रोधसे काँप रहा था। उसकी जबानसे पूरे शब्द नहीं निकल पाते थे। उसका क्षत्रियत्व फुंकार उठा था। उसकी आँखोंसे भीषण दीप्ति निकल रही थी। वह बोली:—"चाण्डाल! जबान बंद कर। अगर एक शब्द भी आगे बोला तो·········।" आगे शब्द न निकले।

साहूकार भी क्रुद्ध हो उठा। बैठा था खड़ा हो गया और अपनी राक्षस-कायको लेकर सुरसुंदरीके सामने जा खड़ा हुआ और कहने लगाः—" नादान औरत ! जानती नहीं हो कि, इस समय तुम मेरे कब्जेमें हो। तुम्हें चाहिए कि, तुम मेरा हुक्म मानो। अहसान मानना और मेरी इच्छाओंके सामने तुम्हें सिर झुकाना चाहिए सो तो एक तरफ रहा। उल्टे अपनी जान बचानेवालेपर गुर्राती हो। ऐसी कृतघ्नता ! देखो ! तुम्हारी भलाई इसीमें है कि तुम चुप चाप मेरी इच्छाके अनुसार चलो और मेरे साथ जीवनका सुख उठाओ। अन्यथा ध्यान रक्खो कि, मुझे जबर्दस्ती अपनी इच्छा पूर्ण करनी होगी। "

सुरसुन्दरीने कहाः—"नालायक सोती सिंहनीको न जगा; नहीं तो वह तुझे कुचल देगी; तेरा सिर विदारण कर देगी; तेरी इस भैंसेकीसी देहको मिट्टीमें मिला देगी। एक पतिव्रता क्षत्राणीके सामने ऐसी बातें करना अपनी मौतको पुकारना है। सावधान ! "

सेठ—वाह ! ये नाजुक हाथ मुझे मिट्टीमें मिलानेके लिए आवें; यह सुकोमल शरीर मुझे कुचलनेकी कोशिश करे; यही तो मैं भी चाहता हूँ। सुरसुन्दरी ! ये सब बातें व्यर्थ हैं। सुख मनाओ और जीवनको सफल करो। तुम्हारी चिल्लाहट यहाँ कुछ काम न देगी। भीम-बलधारी मेरे हाथोंसे तुम्हें बचाने-का सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। "

सुरसुन्दरीने अपने आँचलमेंसे छुपी हुई एक छुरी खींच

ली और गरज कर कहाः—" दुष्टात्मा ! देख ! क्षत्राणीकी रक्षिका, सतीकी मर्यादाकी ढाल, स्त्रीधर्मका कवच और दुष्ट दलनी दानवी यह मेरी छुरी तेरे भीमवल हाथोंसे मेरी रक्षा करेगी। सावधान ! यदि एक कदम भी आगे वढ़ायगा तो अपनेको पृथ्वीमें धूल चाटते पायगा। सावधान ! "

वनिया छुरी देखकर डर गया। वह दो कदम पीछे हट गया। धीरे धीरे पीछे हटता हुआ कमरेके दर्वाजेके पास जा पहुँचा। झटसे बाहर निकल गया। बाहरसे दर्वाजा वंद कर वोलाः—" देखूँ कैसे मेरी आज्ञाका अनादर करोगी ? "

वह बाहरसे सॉकल लगाकर चला गया।

सुरसुन्दरी अकेली रह गई। उसे अपनी वास्तविक स्थितिका भान हुआ। वह सोचने लगी,—अव क्या करना चाहिए ? असहाय अवला ! नाथ ! रक्षा करो ! अशरण-शरण, शरण दो ! हाय ! अव कैसे मैं अपने सतीत्व-रत्नको इस लुटेरेसे बचाऊँ ? आह ! दुनियामें पुरुष कितने नीच और विश्वासघातक होते हैं ? माता वहिन वेटीका जिन्हें खयाल नहीं; अपनी प्रतिज्ञाका जिन्हें विचार नहीं; अपने धर्मका जिन्हें ध्यान नहीं; वे क्या पुरुष हैं ? छिः ! इनसे तो सॉप ही अच्छा है। वह कभी विश्वासघात तो नहीं करता। इसीसे तो लोग कहते हैं कि—' सौंपा सॉप भी नहीं खाता '

हॉं तो एक उपाय है—आत्महत्या। आत्महत्याके विचार-से उसका कलेजा कॉप गया। कौन स्वयं मरनेकी इच्छा

करेगा और फिर आत्महत्या करना भी पातक है। तो किया क्या जाय ? आत्महत्या विशेष पातक है या शील-भंग ? शील-भंगके विचारने उसकी अजब दशा कर दी। वह दृढतासे छुरी पकड़, इधर उधर टहलने लगी।

"नहीं। समुद्रमें कूद पड़ना ही अच्छा है। दुष्ट मेरे मृतक शरीरको छूए यह भी पाप है। शील-रक्षा करना आत्म-रक्षासे लाख गुना अच्छा है। यदि आत्मघात पाप है तो वह पापका अंधेरा शीलरक्षाके अनंत तेजोमय प्रकाशमें अलोप हो जायगा। ओह ! जीवन जाय, पति मिलनेकी इच्छा नष्ट हो, माता पिताके दर्शनोंकी अभिलाषाके खंड खंड हो जायँ, सात कौड़ीमें राज लेकर पतिप्राप्त करनेके मनोरथ सदाके लिए मिट्टीमें मिल जायँ; मगर मेरा शील अखंड रहे ! मेरा सत कायम रहे ! मेरे सतीत्वपर कोई दाग न लगे। प्रभो ! मेरे शील की रक्षा हो ! शील ! शील ! ! शील ! ! !"

सुरसुंदरीने कोटड़ीकी खिड़की खोली। अनन्त समुद्र बाहर दिखाई दिया। उसने नवकार मंत्रका जाप किया, पति-पद-पद्मका ध्यान किया और झटपट काछा मारकर वह समुद्रमें कूद पड़ी। हा ! राक्षसी पुरुष-प्रकृति ! तेरे अत्याचारसे कितनी अबलाएँ यों आत्मघात करती होंगी ?

साहूकार थोड़ी देरमें तीन चार आदमियों सहित वापिस आया, मगर वहाँ सुरसुंदरी नहीं थी। उसने चारों तरफ देखा कहीं कुछ नहीं था, खिड़कीसे बाहर दृष्टिपात किया;

समुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें सुरसुन्दरी डूबूँ तिरूँ स्थितिमें पड़ी थी। उसने नाविकोंको आज्ञा दी,—"तत्काल ही किश्ती उतारकर उसकी रक्षा करो।"

खलासी अभी नौका उतार भी नहीं पाये थे कि, वड़े जोरकी आँधी उठी। समुद्र क्षुब्ध हो गया। पहाड़के तुल्य ऊँची २ तरंगें उठने लगीं। इस तूफानमें नौका स्थिर न रह सकी, उलट गयी और पापी साहूकारके साथ अनेक निर-पराध प्राणियोंको भी उसने अतल जलमें विलीन कर दिया। सतीके अपमानका वदला हाथों हाथ मिल गया।

आयुष्य कर्म जव तक समाप्त नहीं हो जाता तव तक जीवनडोरी नहीं टूटती। सुरसुंदरीकी आयु अभी वाकी थी, उसे अभी संसारके दुःख सुख देखने थे, इसलिए उसके हाथमें टूटे जहाजकी लकड़ीका एक तख्ता आ गया और उसीके सहारे वह तैरने लगी,—समुद्रके थपेड़ोंमें वहने लगी।

[९]

सुरसुन्दरी—दुःखके स्वभावसे अपरिचित राजसुता—आज अनन्त समुद्रमें तैर रही है; कहीं किनारा नहीं दीखता,—हाथ पैरोंकी शक्ति क्षीण हो रही है, तो भी आशा नहीं छूटती। वह जीवनकी रक्षा करना चाहती है, उसे जीवनको सार्थक वनाना है, स्वामीकी वाँधी हुई सात कौड़ियाँ अव भी उसके पल्ले वँधी हुई हैं, उसे उन्हीं सात कौड़ियोंसे राज्य प्राप्त करके अपने स्वामीका दर्शन करना है।

इसी आशाको लेकर वह जहाँ तक वल था, हाथ पैर मारती रही, अन्तमें निर्वलता और अत्यंत थकानके कारण उसे मूर्च्छा आगई और वह समुद्रकी तरंगोंमें डूबने–निकलने लगी।

एक जहाज उधर होकर आगे जा रहा था। उसके स्वामीने सुरसुंदरीको देखा। उसने तत्काल ही आदमियोंको भेजकर उसे निकलवा लिया। वैद्यने उसको देखकर कहा कि, अभी प्राण वाकी हैं। जहाजके स्वामीकी दासियोंने उसको सूखे कपड़े पहनाये और वैद्यकी सूचनाके अनुसार वे उसकी शुश्रूषा करने लगीं।

उसकी मूर्छा टूटी। उसने आँखें खोलीं; अपनेको जहाजके एक सुंदर कमरेमें देखा; अपने आपको अपरिचित स्त्रियोंसे घिरा पाया; क्षीण स्वरमें पूछाः—"मैं कहाँ हूँ?"

दासियोंने कहाः—"कोई चिन्ता नहीं है वहन। तुम सुरक्षित स्थानमें हो।"

सुरसुन्दरीने फिरसे आँखें वंद कर लीं। उसे धीरे धीरे एक एक करके सारी वातें याद आईं। उसने पूछाः—"मैं समुद्रमें गिरी थी, मुझे वापिस किसने निकाली?"

एक दासीने कहाः—"हमारे मालिकने आपको निकलवाया है।"

• • •

समुद्रकी सतह पर जहाज पाल उड़ाता हुआ चला जा रहा

था; सूर्य अस्त हो चुका था; उसकी पिछली लालिमासे जहाजके पाल और समुद्रका जल लाल हो रहे थे। सुरसुन्दरी अब स्वस्थ हो गई थी। वह प्रतिक्रमण करनेके लिए आसन बिछाकर बैठना चाहती थी इसी समय जहाजके स्वामीने उस कमरेमें आकार प्रवेश किया। सुरसुन्दरीने प्रणामकर कहाः— " मैं प्रतिक्रमण करने बैठती हूँ। "

जहाजका स्वामी बोलाः—" सुरसुन्दरी ! इस आयुमें यह वैराग्य क्या कामका है ? मनुष्य–जन्म बड़ी कठिनतासे मिलता है। इसको योंही उदासीनताके साथ, एक वैरागीकी तरह, एक दरिद्रीकी भाँति, एक कैदीकी नाईं, खो न देना चाहिए। इसका सार आनंद, उल्लास, भोग और प्रेमका आदान प्रदान है।

प्रतिक्रमणकी आवश्यकता पाप करनेके बाद, भोग भोगनेके पश्चात्, इन्द्रियोंकी शक्तिका ह्रास होनेके बाद, जीवन–पूर्ण लालसा नष्ट हो जानेकी स्थितिमें होती है। अभी नहीं। पाप-रूपी मैलके चढ़े बिना, प्रतिक्रमण रूपी साबुनसे धोओगी किसे ? "

सुरसुन्दरीने कहाः—" मैं तुमसे उपदेश सुनना नहीं चाहती। "

" तब मेरी आज्ञा सुनना चाहती हो ? "

" कुछ भी नहीं। "

" प्राण बचाया उसका यह बदला ? एक तुच्छसी बात भी प्राणके बदलेमें नहीं हो सकती ? "

" मूर्ख ! जिससे स्त्रीका जीवन है, जिसके कारण स्त्री सिर ऊँचा करके चल सकती है, जिसके कारण गृह स्वर्ग है, जिसके कारण स्त्री देवी कहलाती है, जिसके कारण उसे सर्वोपरि स्थान मिला है, जिसके प्रभावसे सारा संसार स्त्रीकी महत्ताको मानता है और उसके सामने सिर झुकाता है उसी शीलको, उसी सतीत्वको, उसी पतिकी धरोहरको, तू चाहता है और उसे तुच्छ वात वताता है ! तुझे धिक्कार है !"

" यदि तू सीधी तरहसे न मानेगी तो मुझे वल-प्रयोग करना पड़ेगा । "

सुरसुंदरी हँसी और कहने लगीः—" विश्वास-घातक पुरुषोंको अपने वलका वड़ा घमंड रहता है और वही घमंड उनका सर्वनाश करता है ।

"रावणने सीतापर वल आजमाया; सतीत्वके वज्रसे टकराकर वह चूर २ हो गया; दुर्योधनने वलात् द्रौपदीकी लाज लेनी चाही, उसकी खुदकी लाज जाती रही; कीचकने सैरंध्रीका सत् लूटना चाहा; मगर वह खुद लुट गया—हमेशाके लिए संसारसे उठ गया । अभी थोड़े ही दिनकी वात है; इसी अवलाके पाससे, एक सेठ, इसके पतिकी धरोहर छीनना चाहता था, वह समुद्रके अतल जलमें सदाके लिए विलीन हो गया । अव तेरी वारी है । तू भी अपना जोर आजमा और देख कि, क्या परिणाम होता है ? "

संतीकी आँखोंसे भयंकर ज्योति निकल रही थी। उसके प्रभावको जहाजका स्वामी न सह सका। उसको भय भी लगा। वह थोड़ी देर खड़ा कुछ सोचता रहा। फिर मन ही मन कुछ स्थिरकर उसे यह कहकर चला गया "अच्छी बात है।"

[१०]

उसने सुरसुंदरीको बेच उससे धन कमाना स्थिर किया।

उस जमानेमें सोवनकुल नामका नगर बड़ा दुराचारी समझा जाता था। धन वैभवसे परिपूर्ण नगरके लोगोंमें प्रायः दुराचार विशेष ही होता है। सौमेंसे नन्यानवे उदाहरणोंमें दुराचार प्रवृत्तिका कारण धन ही होता है।

जहाजके स्वामीने जहाजके लंगर सोवनकुलके किनारे डलवाये। अनेक प्रकारके कौशल करके उसने सुरसुंदरीको वहीं एक वेश्याके हाथ बेच दिया। वेश्याने सुरसुंदरीका रूप देखकर जहाजके स्वामीको मुँह माँगे पैसे दिये।

सुरसुंदरीको वेश्याके घरमें आये अभी एक घंटा भी नहीं बीता था कि, सारे शहरमें ये समाचार फैल गये। कई मनचले रईस और साहूकार अपने २ इक्कों, टमटमों, बग्घियों और रथों पर सवार हो हो कर आने लगे और सुरसुंदरीकी रूप-सुधाका पान कर कर जाने लगे।

सुरसुंदरी सब कुछ समझ गई थी। उसकी आँखोंसे चौधार आँसू बहने लगे। हाय! बेचारी एक दुःखसे छूटते ही दूसरे दुःखमें जा गिरती है। भाग्यका यह विचित्र खेल है।

वेश्याने सुरसुंदरीको उदासीनता छोड़कर आनंदसे रहने और सुख-भोग करनेका उपदेश दिया। हायरे! सुख भोग! जहाँ देखो वहीं तू इस देवीके लिए कालरूप होकर आ खड़ा होता है! जो तुझे चाहते हैं उनसे तू भागता है और जो तेरा त्याग करते हैं उनके पीछे बुरी तरहसे लगता है; अगर वे तेरा अनादर करते हैं तो तू उन्हें आमरण कष्ट देता है। यह तेरी कैसी नीचता है!

सुरसुंदरीने सोचकर स्थिर किया कि, मीठे शब्दोंद्वारा इससे बोलना चाहिए और यहाँसे निकल भागनेका कोई मार्ग तलाश करना चाहिए। वह बोली:—"माँ! मेरी तबीअत बहुत खराब हो रही है; मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। मुझे दो चार दिन आराम लेने दो।"

सुरसुंदरी एकान्तमें बैठी हुई सोच रही थी कि, अब कैसे यहाँसे छुटकारा हो, उसी समय एक नवयुवती उसके पास आई और कड़ी दृष्टिसे उसकी ओर ताकती हुई बोली:— "जान पड़ता है तू अपना यह अलौकिक सौंदर्य लेकर यहाँ हमें लूटने आई है, सुखसंभोगसे वंचित करने आई है, मगर ध्यान रख कि, हम तुझे कभी यहाँ चैनसे रहने न देंगी, तुझे इस बुरी तरहसे मारेंगी कि तू जनम जनम तक न भूलेगी।"

सुरसुंदरीने कहा:—"नहीं मैं यहाँ रहने नहीं आई हूँ—मैं जबर्दस्ती इस नरकमें ढकेल दी गई हूँ, मेरे शरीरमें इस घरकी वायु तीरसी चुभती है, मुझे जान पड़ता है मानों मैं आगकी

भट्टीमें पड़ी भुन रही हूं। इस भट्टीसे निकलनेका कोई यत्न नहीं है। हाय! यदि तुम अपनी भलाईके लिए भी मुझे यहाँसे निकाल सकतीं, यदि इस नरकसे निकालकर किसी शेरके सामने भी डाल सकतीं, तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानती।"

सुरसुंदरी कहती कहती रो पड़ी। नवयुवतीको आश्चर्य हुवा। उसने प्रश्न कियाः—"क्या तुम अपने रूपयौवनका सुख उठाना नहीं चाहती?"

सुरसुन्दरीने उत्तर दियाः—"यदि हो सके तो मैं उसे सदाके लिए नष्ट कर देना चाहती हूँ। यदि तुम दया करोगी तो तुम्हारा कल्याण होगा।"

नवयुवतीको सुरसुन्दरीकी दशापर कुछ दया आई। साथ ही उसने यह भी सोचा कि, यदि यह यहाँसे निकल जायगी तो यहाँपर मेरा आदर और अधिकार क्षुण्ण रहेगा, अन्यथा यह उनपर अधिकार कर लेगी।

यह नवयुवती वेश्याके घरमें सबसे अधिक रूपवती थी; परन्तु सुरसुन्दरीके सामने उसका रूप पतंगेकासा था; इसीलिये उसने सुरसुन्दरीको वहाँसे निकाल देना ही उचित समझा। उसने कहाः—"यदि तुमको यहाँसे निकल ही भागना है तो पिछली रातको तैयार रहना। मैं सब प्रबन्ध करके तुमको यहाँसे दूर पँहुचा दूँगी।"

सुरसुन्दरीने कहाः—"मैं तुम्हारी यावज्जीवन कृतज्ञ रहूँगी।" नवयुवती चली गई।

[११]

पिछली रातके सन्नाटेमें किसीने आकर उस कमरेके किंवाड़, जिसमें सुरसुन्दरी आकाश पातलकी बातें सोच रही थी, धीरेसे खटखटाये।

सुरसुन्दरीने दरवाजा खोल दिया। नवयुवती अन्दर आई। उसके हाथमें एक रस्सा था। वह बोलीः—"देखो, तुम अपनी रक्षा चाहती हो तो इसके सहारे उतर जाओ। सदर दरवाजे होकर जाना कठिन है। गलीके नाकेपर तुम्हें एक रथ खड़ा मिलेगा। तुम उसमें बैठ जाना। रथवान तुम्हें सुरक्षित स्थानमें पहुँचा देगा।"

सुरसुन्दरी रस्सेके सहारे उतरकर चली गई। नवयुवती-ने एक शान्तिका श्वास लिया।

सुरसुन्दरी जाकर रथमें बैठ गई। रथ चला। सूर्य निकलने तक वह बहुत दूर जंगलमें पहुँच गया। रथ थमा। सारथीने कहाः—"नीचे उतर आओ।"

सुरसुन्दरीने रथसे निकलकर सामने एक काले कलूटे मोटे ताजे आदमीको खड़ा देखा। वह भयभीत दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगी।

सारथी इस रूपराशिको देखकर मुग्ध हो गया। उसके हृदयमें वासनाका सर्प फुंकार उठा। उसने कहाः—"डरो नहीं। मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। मुझे तुम्हें मार डालनेके लिए कहा गया है; परन्तु मैं तुम्हें सुखसे रक्खूँगा। रथमें बैठ जाओ। मैं तुम्हें अपने घर ले चलूँगा।"

सुरसुन्दरी "अच्छा" कहकर रथके पीछेकी तरफ गई और उधरसे समुद्रकी ओर भागी। सारथीने उसे भागते देखा। वह उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। करीब था कि, वह उसे पकड़ ले इतनेहीमें उसके एक ठोकर लगी और वह गिर पड़ा। सुरसुन्दरी एक चट्टानपर जा चढ़ी। सारथी उठकर वहाँ तक पहुँचे इतनेमें सुरसुन्दरी नवकार मंत्रका जाप करती हुई समुद्रमें कूद पड़ी। सहस्रों मगर मच्छोंसे परिपूर्ण उस स्थानमें सुरसुन्दरी कब तक रहती? एक मच्छ उसको निगल गया। हाय सुरसुन्दरी! मगर सुरसुन्दरीका जीवन तो अभी शेष है। उसे तो सात कौड़ीके सहारे राज्य लेना है।

[१२]

जिस मच्छने सुरसुन्दरीको निगला था वही मच्छ एक धीवरके जालमें कुछ ही देर बाद फँस गया। धीवरने मच्छका पेट चीरा। सुरसुन्दरी मूर्च्छित दशामें अन्दरसे निकल आई। धीवरकी स्त्रीने उसे सचेत किया। धीवरने इस देव-दुर्लभ रूपकी मूर्तिको ले जाकर राजाके भेट किया। राजाने उसकी आद्योपान्त कथा सुनकर उसे अपने अन्तःपुरमें भिजवा दिया।

सुरसुन्दरीको देख, उसके स्वर्गीय रूपके साथ अपने रूपकी तुलनाकर राजमहिषीको ईर्ष्या हो आई। उसने सोचा,—यदि यह अन्तःपुरमें रहेगी तो मेरा सौभाग्य-सुख

लूट लेगी, मेरे प्राणनाथको यह अपने वशमें कर लेगी। अतः किसी भी तरहसे हो इसे अपने मार्गसे दूर करना चाहिए।

महिषीने अपने मनोभाव दवाकर, सुरसुन्दरीको अपने पास विठाया, उसकी पीठपर हाथ फेरा और पूछाः—" वहिन ! तुम कौन हो ? कहाँकी रहनेवाली हो ? यहाँ कैसे आई हो ? आकार प्रकारसे तो तुम उच्च कुलकी मालूम होती हो। "

ऐसे प्रेम-परिपूर्ण शब्द कई दिनोंसे उसे सुननेको नहीं मिले थे। उसका हृदय भर आया। उसकी आँखोंसे अश्रुधारा वह चली।

कोमल स्त्री-हृदया महिषीको भी दया आ गई। अहा ! कैसा भोला चहरा है। उसने आँचलसे सुरसुन्दरीके आँसू पोंछे और कहाः—"वहिन ! तुम सब बातें कहो। मैं यथासाध्य तुम्हारी सहायता करूँगी। "

सुरसुन्दरीने अपनी सारी कथा शुरूसे आखिर तक कह सुनाई। उसे सुनकर राजमहिषीको दुःख हुआ। उसने कहाः—" वहन ! यहाँ भी तेरे शीलको लूटनेका प्रयत्न हुए विना नहीं रहेगा। अतः यदि तुम अपनी भलाई चाहती हो तो यहाँसे जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी, चली जाओ। मैं तुम्हें किसी न किसी तरह अन्तःपुरसे निकाल दूँगी। "

सुरसुन्दरी वहाँसे निकलकर भागी। भयानक वनमें भागी जा रही है। रस्ता छोड़ दिया है; क्योंकि रस्ते रस्ते जानेसे वापिस पकड़े जानेका भय है। पैरोंमें काँटे और

कंकर चुभते हैं। उनसे रक्त निकलता है। पैर लहू लुहान हो गये हैं। कर्मकी गति विचित्र है। भगवान ऋषभदेवको एक वरस तक अहार न मिला; महावीर स्वामीके कानोंमें कीलियाँ ठुकीं—आमरण कष्ट हुआ; प्रतापी पाण्डवोंको वनवन भटकना पड़ा; मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रको अनेक कष्ट झेलने पड़े; महासती सीताको लंकामें असह्य कष्ट उठाने पड़े और अन्तमें लोगोंने उनपर कलंक लगाया। ये सब कर्महीके खेल थे। आज सुरसुन्दरी भी उसी कर्म-की मारी ऐसी विपत्ति उठाती हुई चली जा रही है।

वह चलते चलते थककर गिर पड़ी। भूख प्यास और थकानके मारे वह इतनी कातर हो गई कि, उसे अपने तन बदनकी भी सुध न रही।

उस समय कोई विद्याधर विमानमें बैठकर उधरसे जाता था। उसने सुरसुंदरीको इस दशामें पड़े देखा। उसने तत्काल ही विमान ठहराकर सुरसुंदरीको अपने विमानमें बिठा लिया, और फिर वह अपने घरकी तरफ चला।

शीतल पवनके लगनेसे तथा थोड़ी देरके आरामसे सुरसुंदरीको होश आया। उसने विमानमें अपने व एक पुरु-षके सिवा और किसीको न देखा। वह समझी यह फिर नई आपत्ति है। वह नीचे कूद पड़नेकी इच्छासे उठनेका प्रयत्न करने लगी; परन्तु उससे उठा न गया। विद्याधरने उसे चेतमें देखकर कहाः—"बहन! अभी उठनेका प्रयत्न न करो। तुम्हारा शरीर बहुत शिथिल हो रहा है।"

सुरसुन्दरीने कहाः—"मैं किसी पुरुषके साथ जाना नहीं चाहती। मुझे उतार दो; नहीं तो मैं यहाँसे कूद पड़ूँगी।"

विद्याधर बोलाः—"वहिन मैं नहीं समझ सकता कि, तुम्हें पुरुषोंसे ऐसी घृणा क्यों है?"

सुरसुन्दरी उत्तेजित हो उठी और कहने लगीः—"विश्वास-घातक, दुराचारी, धर्माधर्म विचार–हीन, प्रतिज्ञाका भंग करने-वाले, और बकरीके समान स्त्रीको शेरकी तरह अपना भक्षण समझनेवाले पुरुषोंसे जितना दूर रहा जाय उतना ही अच्छा है।"

विद्याधर बोलाः—"वहिन मैं प्रभुको साक्षी रख प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं तुम्हें अपनी सगी वहनके सिवा और कुछ नहीं समझूँगा। तुम विश्वास करो और अपनी सारी कथा आद्योपान्त सुनाओ।"

सुरसुन्दरीने उसे धर्मात्मा समझकर अपनी सारी कथा सुनाई। सुनकर विद्याधरकी आँखोंमें आँसू आगये। उसने कहाः—"कोई भय नहीं है वहन! अव तुमको कोई दुःख नहीं होगा।"

विद्याधर और सुरसुन्दरीने नंदीश्वर द्वीपकी यात्रा की। लौटते समय वे मुनि महाराजके दर्शनार्थ एक जगह उतरे। धर्मोपदेश श्रवण करनेके वाद सुरसुन्दरीने पूछाः—"मैं कव अपने पतिकी आज्ञाका पालन कर सकूँगी और कव मुझे उनके दर्शन होंगे? कहाँ होंगे?

मुनिने संक्षेपमें उत्तर दियाः—" वेनाट द्वीपमें तुझे तेरा स्वामी मिलेगा।"

सुरसुन्दरी और विद्याधर मुनिको नमस्कारकर विद्याधरके राजमें गये।

विद्याधर और उसकी पत्नियाँ सुरसुन्दरीका बड़ा आदर भक्ति करते थे। सुरसुन्दरी आनंदसे अपना समय विताती थी। उसने वहाँ रहकर तीन चार विद्याएँ भी विद्याधरके पाससे सीख लीं। जब उसकी साधना पूरी हुई, विद्याओंपर पूर्ण अधिकार होगया तब उसने विद्याधरसे कहाः—" बंधु! यहाँ रहते मुझे बहुत दिन होगये। अब मुझे अपना कार्य साधन करनेके लिये वेनाट द्वीपमें जाना है। वहाँ पहुँचा देनेकी कृपा और कीजिये।"

विद्याधर बोलाः—" बहिन! यह राज तुम्हारा ही है। यहीं रहो। मैं तुम्हारे स्वामीको भी खोज लाऊँगा। तुम्हारे जानेसे हमारा घर शून्य हो जायगा।"

सुरसुन्दरीने कहाः—" वन्धु! मुझे भी इस घरको छोड़कर जाते दुःख होता है, परन्तु स्वामीके विना यहाँ रहना इससे भी ज्यादा दुःखदायी है। अतः कृपाकर मुझे वेनाट द्वीप पहुँचा दीजिये।"

[१३]

सुरसुन्दरी वेनाट द्वीपमें आई और रूप परिवर्तिनीविद्याके द्वारा पुरुष बनकर रहने लगी।

उसने सात कौड़ियोंके चने खरीदे। उन्हें लेकर वह शहर-के बाहर जा बैठी। पहले दिन उसको तीन कौड़ियोंका नफा रहा। दूसरे दिन भी इसी तरह चने लेकर गई। पाँच कौड़ियों-का नफा हुआ।

धीरे धीरे उसका व्यापार बढ़ा। अब उसने एक पानीका घड़ा भी रखना शुरू कर दिया। गरमीकी ऋतु थी। लकड़हारे लकड़ियोंका गट्ठा लेकर जब आते थे तब शहरसे दो माइल दूर एक जगह वे विश्राम लेनेके लिये गट्ठे उतारते थे। वहीं विमलवाहन (सुरसुन्दरीने अपना नाम विमलवाहन रक्खा था) बैठता था। लकड़हारोंको वह पानी पिलाता और वे बदले-में उसके पास एक लकड़ीका टुकड़ा निकालकर डाल देते। इस तरह शाम तक उसके पास पाँच सात गट्ठों जितनी लकड़ियाँ जमा हो जातीं।

अब उसने लकड़ीका व्यापार भी शुरू कर दिया। वहीं कम कीमतमें लकड़ीके गठे खरीद लेता और गाड़ियोंमें भर कर वहाँसे शहरमें अपनी दुकानपर भेज देता। उससे खूब नफा होने लगा। थोड़े ही दिनोंमें वह एक अच्छा धनिक व्यापारी समझा जाने लगा।

वहाँ रहते हुए उसको कई बरस हो गये। एक बार कहीं-से एक चोर आया और विद्याबल द्वारा चोरियाँ करने लगा। सारे शहरमें हा हा कार मचगया, पुलिस सिर मारकर रह गई मगर उसे कोई न पकड़ सका। इससे उसका इतना

हौसला बढ़ गया कि वह एक दिन राजकन्याको भी उठा ले गया। राजाने ढिंढोरा पिटवाया कि, जो कोई चोरको पकड़ कर लायगा और राजसुताको छुड़ायगा उसे राजसुता सहित आधा राज्य दूँगा।

कई लोगोंने चोरको पकड़नेका प्रयत्न किया, परन्तु कोई भी कृतकार्य नहीं हुआ। अन्तमें विमलवाहनने बीड़ा उठाया। रातमें बैठकर परविद्याहारिणी, शत-हस्ती-बलदायिनी और अदृश्यकारिणी विद्याका स्मरण किया। विद्याएँ सधी हुई थीं ही। उनका आश्रय लेकर वह चोरको पकड़ने चला।

विमलवाहन चोरके गुप्त स्थानमें, अदृश्यकारिणी विद्या द्वारा अदृश्य होकर पहुँचा। वहाँ उसने चोरको कैद किया और राजसुताको तथा चोरको राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने घोषणाके अनुसार विमलवाहनके साथ राजसुताका व्याह कर दिया और अपना आधा राज्य भी सौंप दिया।

विमलवाहनने आधा राज्य लेकर सबसे पहले बंदरगाहका प्रबंध किया। उसने आज्ञा दे दी कि, किसी भी जहाजके स्वामीको हमारे सामने उपस्थित किये बिना शहरमें न आने दिया जाय और कर वसूल करनेमें शिथिलता न हो।

कार्य इसी तरह चलता रहा। एक दिन अनेक स्थानोंकी मुसाफिरी करके अमरकुमारके जहाज बेनाटके किनारे आ लगे। मालका कर चुकाकर जब वह शहरमें जानेको तैयार हुआ तब आदमियोंने उसे रोका और कहाः—" पहले तुम्हें हमारे राजाके पास चलना होगा।"

"मुझे राजाके पास तो जाना ही है।" कहकर अमर-कुमारने चलनेको कदम उठाया।

सिपाहीने रोककर कहाः—"हमारे नवीन महाराजकी यही आज्ञा है कि शहरमें जानेके पहले जहाजका स्वामी उनके सामने पेश किया जाय।"

विवश उसे सिपाहीके साथ विमलवाहनके पास जाना पड़ा। विमलवाहनने उसे देखा। एक दम चौंक पड़ा। उसके हृदयमें अजब उथल पुथल प्रारंभ हुई। हाय! यही वह मुख है! कैसा सूख गया है! गाल पिचक गये हैं; आँखें गढ़ेमें धँस गई हैं। होठोंपर मधुर हास्य नहीं है; आँखोंमें चमक नहीं है; ललाट तेजहीन हो गया है। हाय! यही क्या मेरे स्वामीका मुख है? हृदय धीरज रख।

अमरकुमारके अन्तःकरणमें भी एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ यह वही मुख तो है, नेत्र भी वे ही हैं; नासिका भी वही है, अधरोंकी मंद मुस्कान भी वही है। मगर! मगर! यह तो पुरुष है। हाय मेरी यह क्या दशा हो गई है? मुझे सब जगह वही वह क्यों दिखाई देती है? वह मुख तो भुलाए नहीं भूलता। नहीं! ओह! कितनी यातना है? मेरे ही कारण,—हाँ! हाँ मेरे ही कारण वह मुख सदाके लिए राक्षसके पेटमें विलीन हो गया। उह! भगवान कैसे इस भयानक पापसे मेरा उद्धार होगा?

उसकी आँखोंसे दो चार आँसूकी बूँदें टपक पड़ीं। विम-लवाहनने भी उन्हें देखा। उसका अन्तःकरण शीघ्र ही यह

निश्चय करनेके लिये व्याकुल हो रहा था कि, यह अमर-कुमार ही है या कोई और ?

विमलवाहनकी आज्ञासे वहाँ एकान्त हो गया। अमरकुमारसे विमलवाहनने बैठनेका इशारा किया। वह बैठ गया। विमल-वाहनने पूछाः—"आप कहाँके रहनेवाले है ? आपका मुख ऐसा मलिन क्यों हो रहा है ?"

अमरकुमारके हृदयमें यह प्रश्न तीरसा चुभा। क्या उत्तर देता कि इस दशाका क्या कारण है ? जो उसके जागतेका दर्शन और निद्राका स्वप्न हो रही थीः जिसके विना उसका सारा जीवन, सारा हृदय भयानक स्मशानवत हो रहा था, अन्तःकरणमें भीम स्वरसे हाहाकार उठ रहा था उसीको,—हाय ! उसी को,—मैं राक्षसके आहारके लिए छोड़ आया हूँ,—यही दुःख है, इसी दुःखसे मेरी यह दशा हो गई है।

विमलवाहनके मनकी दशा भी ठीक न थी, तो भी उसने जबर्दस्ती उसको रोक रक्खा था। उसने फिर पूछाः—"सेठ ! बताओ ! तुम्हारी इस दशाका कारण क्या है ? यदि हो सका तो मैं तुम्हारे उस कारणको हटाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा !"

अमरकुमार भर्राई हुई आवाजमें बोलाः—"असंभव ! महाराज ! असंभव ! मेरे दुःखका कारण मिटना असंभव है। जिसको मैंने मूर्खतावश राक्षसके उदरस्थ होनेके लिए छोड़ दिया, वही मेरी लाडली सुरसुंदरी ! वही मेरी जीवनकी ज्योति ! रिपुमर्दन नृपसुता ! वही मेरी आत्माका नूर, सेठ धना

वहकी प्यारी वधू ! हाय ! अब कहाँ है ? नहीं, चली गई ! वह हमेशाके लिए मुझे छोड़कर चली गई। नहीं महाराज असंभव है ! सर्वथा असंभव है..........."

विमलवाहन अमरकुमारकी दशा देख उसकी बातें सुन उसे पहचान दूसरे कमरेमें चला गया था।

"नहीं सर्वथा संभव है !" कहती हुई सुरसुंदरी आकर अमरकुमारसे लिपट गई।

आह ! कैसा स्वर्गीय सुख है। बारह बरसके बाद आज बिछड़े हुए हृदय पुनः मिले हैं। दोनों एक दूसरेसे चिमटकर बहुत देर तक रोते रहे। अन्तमें अमरकुमारने उसके आँसू पोंछकर कहाः—"प्रिये ! अपराध मेरा अक्षम्य है तो भी मुझे क्षमा करो।"

सुरसुन्दरीने रोते रोते कहाः—"नाथ ! फिर कभी ऐसी परीक्षामें मत डालना। आपकी आज्ञानुसार सात कौड़ियों द्वारा प्राप्त किया हुआ यह राज्य आपके अर्पण है।"

"प्रिये !"

"नाथ !"

उपसंहार ।

कर्नाटके राजाने सारा हाल जाना । गुणपालने अपनी कन्या गुणसुंदरीका—जिसका पाणिग्रहण सुरसुंदरी (विमल-वाहन) के साथ कराया था—व्याह अमरकुमारके साथ कर दिया । राज्यमें गुणपाल और अमरकुमारकी दुहाई फिरी ।

अमरकुमार और सुरसुंदरी चंपापुरीमें आये । वहाँ आनंदसे गृहस्थधर्म पालते हुए अपना काल विताने लगे ।

एक दिन—जब उनके यौवनका अस्तकाल था—उन्होंने मुनि महाराजसे उपदेश सुना, वैराग्य हुआ और दीक्षा ले ली ।

अन्तमें सुरसुन्दरी और अमरकुमारने संसारभ्रमणका दुःख मिटानेके लिए तपश्चरण कर अपना जीवन, सफल किया ।

गृहिणीगौरव ।

(अ०-श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा ।)

इसमें नारी जीवनको गौरवान्वित करने वाली सात गल्पें हैं

(१) **गृहिणीगौरव**—इसमें बताया गया है कि, पतिकी वीरता, पतिकी महत्ता और पतिके शौर्यमें ही स्त्रीका गौरव है। स्त्रीका गौरव इसमें नही है कि वह साहूकारकी या राजाकी पुत्री होनेसे अपने आपको बडी माने और पतिको तुच्छ दृष्टिसे देखे।

(२) **प्राणविनिमय**—इसमें बताया गया हैं कि, गरीबीमें भी पतिपत्नी कैसे सुखसे रह सक्ते है। गरीब स्त्री अपने पतिप्रेमके प्रभावसे राजपुत्र तकको सजा दिला सकती है और एक नारीको विवश होनेसे बचानेमें अपने प्राण दे सकती है। इतनी करुण कथा है कि, पढ़ते पढ़ते आँसू रोके नहीं रुकते।

(३) **सेवाका अधिकार**—इसमें बताया गया है कि, पुरुष किस तरह एक नारी व्रत पालन कर सक्ता है। स्त्री किस तरह विमुख स्वामी-को भी सेवा करके अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं। पतिकी अमानीती होनेपर भी किस तरह पतिकी निंदा करनेवालोंका मीठा तिरस्कार करती है और अपने आचरण द्वारा यह बताती है कि,

एको धर्म एक व्रत नेमा, मन वचकाय पतिपद प्रेमा।

(४) **वीणा**—इसमें बताया गया है कि, आज कलके पढ़े लिखे पुरुष भी कैसे धनलोलुप होते है। एक सुशिक्षिता कन्या किस भाँति अपने पिताको कर्जकी बदनामीसे बचानेके लिए अपना सब कुछ देकर आप दाने दानेकी मोहताज हो जाती है। किसतरह अपने गुणोंसे फिरसे घरको सुव्यवस्थित करके सुखी होती है।

(५) **सतीतीर्थ**—इसमें बताया गया है कि एक सरल कृषक बालिका किस भाँति एक डाकूकोभी सन्मार्ग पर ला सकती है।

(६) **अरुणा**—इसमें बताया गया है कि एक स्त्री अपने कर्तव्यके लिए अपने पिताकी मान मर्यादाको बचानेके लिए, एक पुरुषसे प्रेम करती

हुई भी और उसके हाथों कैद हो जाने पर भी उससे लग्न नहीं करती है और उसको अपने पिताके साथ सुलह करनेके लिए अपनी मौन भाषाद्वारा, अपनी उदासीनता द्वारा विवश करती है। बडी ही अद्भुत कथा है।

(७) त्याग—इसमें बताया गया है कि, स्त्री अपने पतिको प्रसन्न करनेके लिए कर्तव्य समझकर—अपने प्राण तक दे सकती है।

अनेक बहुरंगी और एक रंगी चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य सादीका १॥) सुनहरी अक्षरोंवाली बाइंडिंगके २) रु.

सुप्रसिद्ध विद्वान हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालयके मालिक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं—

" गृहिणी- गौरवकी सातों गल्पें बडी ही सुंदर और शिक्षाप्रद है। सातोंहीमें कोमलता, कमनीयता और त्यागशीलताके मनोमुग्धकर चित्र चित्रित किये गये हैं। इन्हें देखकर आँखें जुडा जाती है और हृदय पवित्र प्रेमकी भावनासे भर जाता है। प्रायः प्रत्येक कहानीमें ऐसे प्रसंग आये हैं जिन्हें पढ़कर आँसुओंका रोकना असंभव हो जाता है। पढ़ी लिखी बहिन-बेटियोंको देनेके लिए इससे अच्छी भेट और क्या होगी ? जो स्त्रियाँ पढ़ नहीं सकतीं हैं उन्हें पढ़कर ये कहानियाँ सुनानी चाहिए। इससे उनके हृदयपवित्र और उन्नत बनेंगे। पवित्र कहानियोंका ऐसा सुंदर संग्रह प्रकाशित करके आपने स्त्रियोपयोगी साहित्यके मनोरंजक अंशकी बहुत अच्छी पूर्ति की है। "

१४–आदर्शबहू।

अनु०—पं० शिवसहाय चतुर्वेदी

बढ़िया एण्टिक पेपरपर छपी हुई। चार सुंदर चित्रोंसे सुशोभित। (दूसरा संस्करण मू०॥।) सजिल्द १।)

यह बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत शिवनाथ शास्त्रीकी 'मेजबऊ' नामकी पुस्तकका परिवर्तित अनुवाद है। बंगालमें इसका बडा आदर है। थोडे ही समयमें अबतक इसके उन्नीस संस्करण हो चुके है आशा है। हिन्दी संसारमें भी इसका आदर होगा। इसमें शारदाके चरित्र द्वारा बताया गया है कि, एक सुशील बहू किस प्रकारसे सारे कुटुंबमें सुखशान्ति रख सकती है ? कैसे

समय पर अपने पतिकी सहायता कर सकती है और कैसे प्रेम दिखानेवाले ससुर और विना ही कारण नाराज रहनेवाली सासकी, एकाग्रताके साथ एकसी भक्ति और सेवा कर सकती है। अपनी गृहस्थीको सुखपूर्ण बनानेके लिए हरेक घरमें इस पुस्तकका पाठ होना चाहिए।

दरिद्रता और उससे बचनेके उपाय।

(अनु०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।)

इसमें बताया गया है कि, हरेक मनुष्य प्रामाणिक प्रयत्नसे, रातदिन धनवान बननेके विचारोंसे, अपनेको क्षुद्र न समझनेके खयालसे, गरीबीसे छूट सकता है। उदाहरणोंद्वारा इस बातको प्रमाणित किया है। अन्तमें एक ऐसी कथा दी गई है जिसे पढकर अत्यंत दरिद्र मनुष्यके हृदयमें भी धन-वान बननेका साहस होता है, अपनी एक आने जितनी पूँजी लेकर भी वह कार्यक्षेत्रमें आजाने की हिम्मत करता है, वह रोजगार करके धनवान बन सकता है। स्त्रियाँ इसे पढकर घरके सारे वातावरणको ही बदल देती हैं। अपने घरको धनियोंका घर बना लेती है। मू० दो आने मात्र।

राजपथका पथिक।

(अ०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।)

दुनियामें रहते हुए और सांसारिक झंझटोंमें फँसे हुए भी मनुष्य किस तरह अपने जीवनको आध्यात्मिक बना सकता है, किस तरह सुख और शान्तिसे जीवन बिता सकता है, सो इस पुस्तकमें सरलतासे समझाया है। मूल्य पाँच आने।

पुनरुत्थान।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।)

आशा, विश्वास, त्याग, सेवा, पतितोद्धार और स्वाधीनताकी साक्षात् प्रतिमा इस कथाको पढ़कर सोता आत्मा जाग उठता है। खोई मनुष्यता मिल जाती है; हृदय पवित्र और स्वर्गीय भावोंसे परिपूरित हो जाता है। मूल्य चौदह आने।

अपूर्व आत्मत्याग ।

(अनु०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा ।)

प्रेम, पवित्रता, सतीत्व और त्याग ये स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण हैं। आदर्श स्त्रियोंमें ये आदर्श रूपसे होते हैं। दुःख उन्हें विचलित नहीं कर सकते। अंधा प्रेम उन्हें पवित्रता और सतसे नहीं डिगा सकता। स्त्रियाँ जिससे प्रेम करती है उसके लिए अपना धन-माल सुख-वैभव सभी दे सकती हैं; इतना ही क्यों? वे अपने प्राण तक दे सकती हैं; परन्तु अपना सत और अपनी पवित्रता नहीं दे सकतीं। ये ही बातें विमलाके चरित्रद्वारा इस पुस्तकमें भली प्रकार समझाई गई हैं। कथा इतनी मनोहर करुण और उपदेशप्रद है कि अनेकोंने इसको पाँच पाँच और सात सात बार पढ़ा है। तो भी उनका जी न भरा। ऐसा उत्तम उपन्यास आजतक प्रकाशित नहीं हुआ। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

वरदान ।

(लेखक—श्रीयुत प्रेमचंद्रजी ।)

कर्त्तव्य और प्रेमका अनोखा संग्राम, कर्तव्यके हेतु सुखका बलिदान, बालपनकी मनमुग्धकारी चुहलें, माता पिताकी कन्याको धनिक घरमें ब्याहनेकी लालसासे युवक युवतिके हृदयोंके टुकडे, और परोपकारके लिए अपना सर्वस्व समर्पण। ये सब आपको इस ग्रंथमें देखनेके लिए मिलेंगे। श्रीयुत प्रेमचंद्रजीकी सुविख्यात लेखिनीका चमत्कार स्वयं प्रसिद्ध है। पवित्र भावनाओंसे पूर्ण इस ग्रंथका मूल्य १) रु. सजिल्दका १॥)

☞ हमारी दूसरी पुस्तकें—

११ विधवा प्रार्थना ।

ले०—मौलाना अल्ताफहुसेन हाली ।

" उर्दूके परम प्रसिद्ध लेखक और कवि शमसुल उल्मा मौलाना अल्ताफहुसेन हॉलीकी कविता '**मनाजात बेवा**' का यह नागराक्षर संस्करण है।

मूल पुस्तकके कठिन उर्दू और अप्रचलित हिन्दी शब्दोंके अर्थ पादटीकामें दिये हैं।

मौलाना साहबने इस कवितामें विशेषकर हिन्दु विधवाओंके दुखोंका वर्णन किया है। मनाजातका विषय करुणा प्रधान है। आरंभके १४ पृष्ठोंमें विधवा शोकभरे शब्दोंमें ईश्वरकी लीलाका वर्णन करती है, फिर शेष अंशमें वह अपनी रामकहानी सुनाती है।

भाव और रसकी प्रधानताके सिवा, इस कवितामें अलंकार, प्रकृति वर्णन, मनोहर पदयोजना आदि अनेक चमत्कार हैं, । जिनका आनंद पुस्तकको आद्योपान्त पढ़नेहीसे प्राप्त हो सकता है। भाव और भाषा दोनोंके विचारसे 'विधवाप्रार्थना' एक आदर्श–रचनाका आदर्श है। मू० पाँच आने।

"कविता बड़ी ही सरस, स्वाभाविक और हृदयद्राविणी है। पुस्तकको पढकर कठोर हृदय भी विधवाओंकी दीन दशाओंपर विना दो आँसू बहाये नहीं रह सकता। पुस्तक आदिसे अंत तक प्रसाद गुणसे परिप्लावित है। प्रत्येक सहृदय पाठकको एक बार यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए।"

—प्रभा (कानपुर)

जैनरामायण।

(अ०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।)

इसमें राम, लक्ष्मण, सीता और रावणके मुख्यतासे और हनुमान, अंजनासुन्दरी, पवनंजय तथा वालीके गौणरूपसे चरित्र हैं। प्रसंगवश और भी कई कथाएँ इसमें आगई है। वर्णन करनेका ढंग बडा ही सुन्दर है। हिन्दु रामायणसे यह बिलकुल भिन्न है। इसके पढनेसे पाठकोंको यह भी ज्ञात हो जाता है, कि रामचंद्रजीकी ओरसे युद्ध करनेवाले 'वानर' पशु नहीं थे बल्कि वे विद्याधर थे। 'वानर' एक वंशका नाम था। इसी तरह रावण आदि 'राक्षस–दैत्य नहीं थे बल्कि 'राक्षस' एक वंशका नाम था। जैनाचार्य, श्रीहेमचंद्राचार्य रचित त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रके सातवें पर्वका यह अनुवाद है। छपाई सफाई बाढ़िया। पकी बाइंडिग। ऊपर सुनहरी अक्षर मू० ४) रु.

सर्वोदय।

लेखक—म० गाँधी।

कानपुरकी 'प्रभा' लिखती है:—"अर्थशास्त्र और सार्वजनिक सुखके संबंधमें सुविख्यात अंग्रजी लेखक स्वर्गीय जॉन रस्किनके विचार अत्यंत सुंदर और दिव्य हैं। इस पुस्तकमें वे ही विचार महात्मा गाँधीकी लेखनी द्वारा व्यक्त किये गये हैं। × × × × × रोटीवाद और भौतिक सुखवादकी अति रोकनेके लिए, उनके कृष्णपक्षको जाननेके लिए व उनके मादक और पतनकारी फंदेसे बचनेके लिए सर्वोदयके विचार विशेष महत्त्वके हैं। मू० चार आने।

गाँधीजीका बयान या सत्याग्रह मीमांसा।

आवरण पृष्ठपर महात्माजीका फोटो। मू० ॥) छपाई सफाई सुंदर।

प्रभाने लिखा है:—"पाठकोंको मालूम होगा कि, पंजाव-हत्याकांड संबंधी जॉच करनेके लिए हंटर कमेटी नामकी एक कमेटी बैठी थी। उस कमेटीमें महात्माजीने लिखित इकरार दिया था, वही इस पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया गया है। गाँधीजीका यह बयान एक अत्यंत महत्वपूर्ण वक्तव्य है। इसीमें महात्माजीने अपने सिद्धान्तोंका मंडन और सत्याग्रहपर किये जानेवाले आक्षेपोंका खंडन अपनी स्वाभाविक योग्यता और असाधारण उत्तमतासे किया है। प्रकाशकोंने इस बयानको हिन्दीमें प्रकाशितकर हिन्दीकी अच्छी सेवा की है।"

तीन रत्न।

ले०—महात्मा गाँधी।

इसमें तीन कथाएँ हैं। (१) मूर्खराज (२) मनुष्य कितनी जमीनका मालिक हो सकता है? (३) जीवनडोर। संसारके प्रसिद्ध महापुरुष टाल्स्टायने अनेक कथाएँ लिखी हैं। उन्हींमेंसे जो कथाएँ सर्वोत्कृष्ट थीं उनको महात्माजीने गुजरातीमें लिखा था। उन्हीं गुजराती कथाओंका यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तककी उत्तमताके विषयमें दोनों महापुरुषोंका नाम ही काफी है। मू० दस आने।

५—पञ्चरत्न ।

ले०—महात्मा गाँधी

इसमें महात्माजीकी लिखी हुई पाँच पुस्तकें हैं—१ कानून तोड़ना धर्म है । २ मुस्तफा कामिलपाशा और उसका अन्तिम संदेश । ३ पूर्व और पश्चिम ४ एक धर्मवीरकी कथा । ५ धर्मनीति और नीतिधर्म । मूल्य १।)

स्वदेशी धर्म ।

अनु०—कृष्णलाल वर्मा ।

इसके विषयमें गाँधीजी कहते हैं । " इसके अंदर जो विचार हैं वे स्वदेशी धर्मको सुशोभित करनेवाले हैं । मै चाहता हूँ कि समस्त भारत इनका पूर्णतया उपयोग करे । " मू० ।)

जैन सतीरत्न । (गुजराती)

इसमें ब्राह्मी, सुंदरी, चंदनबाला, महासती सीता और सती दमयंतीके चरित्र है । अनेक सादे और रंगीन चित्रोंसे सुशोभित । मू० १।) सुनहरी अक्षरोंकी जिल्दके १॥)

कलियुगमें देवताओंके दर्शन ।

हास्यरसपूर्ण एक छोटासा निबंध । मू० एक आना ।

संवाद संग्रह ।

(लेखक—कृष्णलाल वर्मा ।)

हर साल हरेक पाठशाला और हरेक हाइस्कूलमें वार्षिकोत्सव और पारितोषिक वितीर्णोत्सव हुआ करते हैं । उनमें खेलनेके लिए संवाद कठिनतासे मिलते हैं । इसी कमीको पूरा करनेके लिए लेखकने यह संवाद संग्रह तैयार किया है । इसमें कन्याओंके और लडकोंके खेलने लायक संवाद हैं । ये संवाद बंबईमें बडी ही सफलताके साथ खेले जा चुके हैं । दीवाली तक यह संग्रह प्रकाशित होगा । मूल्य लगभग एक रुपया ।

पुस्तकें मिलनेका पता—

ग्रंथभंडार, हीराबाग, गिरगाँव बंबई ।

मुंबई वैभव प्रेस, मुंबई.